अनेकान्त

सम्पादक–जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

सोनगढ़के सन्त

श्री सत्पुरुष कानजी स्वामी

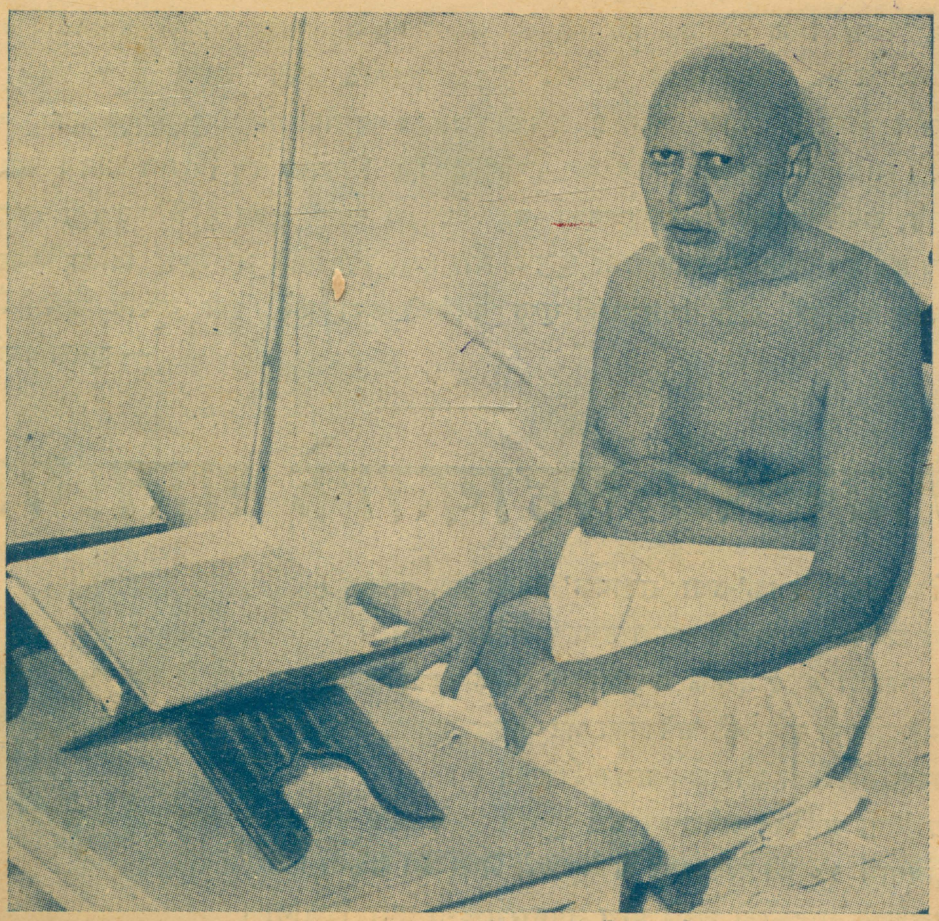

श्री कानजी स्वामी करीब एक हजार साधर्मी भाइयोंके साथ श्री ऊर्जयन्त-गिरि (गिरनार) की यात्रार्थ गए हैं । उनके सदुपदेशसे गुजरातप्रान्तमें अनेक दिगम्बर जैनमन्दिरोंका निर्माण हुआ और हो रहा है ।

अनेकान्त
वर्ष १२
किरण ६

फरवरी
सन्
१९५४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

१. शान्तिनाथ स्तुति :— [श्री श्रुतसागर सूरि २५१

२. आठ शंकाओंका समाधान— [क्षुल्लक सिद्धि सागर २७२

३. हमारी तीर्थ यात्राके संस्मरण— [परमानन्द शास्त्री २७६

४. राष्ट्र कूट कालमें जैन धर्म— [डा० अ० स. अल्तेकर २८३

५. मथुराके जैनस्तूपादिकी— [यात्राके महत्वपूर्ण उल्लेख २८८

६. अपभ्रन्श भाषाके अप्रकाशित कुछ ग्रन्थ — [परमानन्द जैन २९३

. संस्कृत साहित्यके विकासमें— [जैन विद्वानोंका सहयोग २९५

८. दोहाणुपेहा— [लक्ष्मीचन्द ३०२

श्री-जिज्ञासा

मुझे उन श्रियोंको जाननेकी इच्छा है जो क्षुल्लकों-ऐलकों तथा मुनियोंके साथ लगी रहती हैं और जिनका सूचन क्षुल्लक-एलकोंके नामके साथ 'श्री १०५' और मुनियोंके नामके साथ 'श्री १०८' लिखकर किया जाता है। ये दोनों वर्गकी श्रियाँ यदि भिन्न भिन्न हैं तो उन सबके अलग-अलग नाम मालूम होनेकी जरूरत है और यदि मुनियोंकी १०८ श्रियोंमें १०५ वे ही हैं जो क्षुल्लकों ऐलकोंके साथ रहती हैं तो १०५ श्रियोंके नामके साथ केवल उन तीन श्रियोंके नाम और दे देनेकी जरूरत होगी जो क्षुल्लक-ऐलकोंकी अपेक्षा मुनियोंमें अधिक पाई जाती है। साथ ही यह भी जाननेकी इच्छा है कि श्रियोंका वह विधान कौनसे आगम अथवा आर्ष ग्रन्थमें पाया जाता है, कबसे उनकी संख्या-सूचनका यह व्यवहार चालू हुआ है और उसको चालू करनेके लिये क्या जरूरत उपस्थित हुई है। अतः मुनिमहाराजों, क्षुल्लकों-और दूसरे विद्वानोंसे भी मेरा विनम्र निवेदन है कि वे इस विषयमें समुचित प्रकाश डालकर मेरी जिज्ञासाको तृप्त करनेकी कृपा करें। इस कृपाके लिये मैं उनका बहुत आभारी रहूँगा।

—जुगलकिशोर मुख्तार

अनेकान्तकी सहायताके सात मार्ग

(१) अनेकान्तके 'संरक्षक'-तथा 'सहायक' बनना और बनाना।

(२) स्वयं अनेकान्तके ग्राहक बनना तथा दूसरोंको बनाना।

(३) विवाह-शादी आदि दानके अवसरों पर अनेकान्तको अच्छी सहायता भेजना तथा भिजवाना।

(४) अपनी ओर से दूसरोंको अनेकान्त भेंट-स्वरूप अथवा फ्री भिजवाना; जैसे विद्या-संस्थाओं लायब्रेरियों, सभा-सोसाइटियों और जैन-अजैन विद्वानोंको।

(५) विद्यार्थियों आदिको अनेकान्त अर्ध मूल्यमें देनेके लिये २५), ५०) आदिकी सहायता भेजना। २५ की सहायतामें १० को अनेकान्त अर्धमूल्यमें भेजा जा सकेगा।

(६) अनेकान्तके ग्राहकोंको अच्छे ग्रन्थ उपहारमें देना तथा दिलाना।

(७) लोकहितकी साधनामें सहायक अच्छे सुन्दर लेख लिखकर भेजना तथा चित्रादि सामग्रीको प्रकाशनार्थ जुटाना।

नोट—दस ग्राहक बनानेवाले सहायकोंको 'अनेकान्त' एक वर्ष तक भेंट-स्वरूप भेजा जायगा।

सहायतादि भेजने तथा पत्रव्यवहारका पता:—

मैनेजर 'अनेकान्त'

वीरसेवामन्दिर, १, दरियागंज, देहली।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम

वार्षिक मूल्य ५)

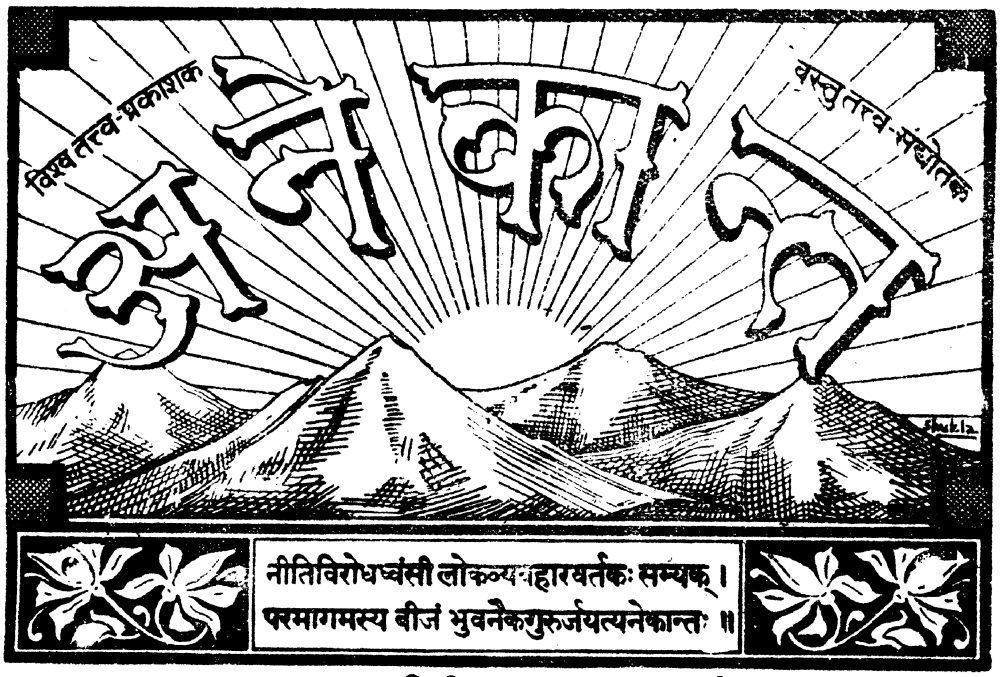

एक किरण का मूल्य ।।)

सम्पादक—जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

वर्ष १२ किरण ६ | वीरसेवामन्दिर, १ दरियागंज, देहली | माघ वीर नि० संवत् २४८०, वि० संवत २०१० | फरवरी १९५४

श्रीश्रुतसागरसूरिविरचिता

शांतिनाथस्तुतिः

वाचामगम्यो मनसोऽपि दूरः, कायः कथं वेत्तुमलं तमज्ञः।
तथापि भक्त्या त्रितयेन वंद्यः, श्रीशांतिनाथः शरणं ममाऽस्तु ॥ १ ॥
महीलताऽहिर्मृगराण्मृगः स्यादिभः स्तुभोऽभोदचयो दवाग्निः।
नाम्नापि यस्याऽसुमतां स दैवः श्रीशांतिनाथः शरणं ममाऽस्तु ॥ २ ॥
यः संवरारिर्नकदाश्रवोभूच्छुचिर्नसंतापकरः परेषां।
चक्री तथाप्यत्र न च द्विजिह्वः, श्रीशांतिनाथः शरणं ममाऽस्तु ॥ ३ ॥
विघ्नव्युदास स्त्रिजगद्व्युदासः प्रकाममिंद्रैः प्रणतः सदा सः।
संपत्तिकर्त्ता विपदेकहर्त्ता, श्रीशांतिनाथः शरणं ममाऽस्तु ॥ ४ ॥
न दुर्गतिर्नैव यशोविनाशो न चाल्पमृत्युर्न रुजां प्रवेशः।
यत्सेवया भद्रमिदं चतुर्द्धा श्रीशांतिनाथः शरणं ममाऽस्तु ॥ ५ ॥
कृतांजलिर्यस्य सदा पिनाकी, सहाच्युतस्तस्य कियान् पिनाकी।
योगैकलक्ष्यः कृतिकल्पवृक्षः श्रीशांतिनाथः शरणं ममाऽस्तु ॥ ६ ॥
नयस्त्रिवेदी परमस्त्रिवेदी निराकृता येन विदां त्रिवेदी।
तपःकुठारस्मरदारुभेदी, श्रीशांतिनाथः शरणं ममाऽस्तु ॥ ७ ॥
निर्दोषरूपः पदनम्रभूपः, कलंकमुक्तः सदृगंशयुक्तः।
आनन्दसांद्रो भुवनैकचन्द्रः, श्रीशांतिनाथः शरणं ममाऽस्तु ॥ ८ ॥
स्तुतिःकृतेयं जिननाथ-भक्त्या, विदांवरेण श्रुतसागरेण।
बोधिः समाधिश्चनिधिर्बुधानामिमां सदाऽऽदायजनो जिनोऽस्तु ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीशांतिनाथस्तुतिः समाप्ता ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आठ शंकाओंका समाधान

(श्री० १०५ सुल्लक सिद्धसागर)

समयसार की १५वीं गाथा और श्री कान जी स्वामी नामक लेखमें जो अनेकान्तकी गत किरण ६ में प्रकाशित हुआ है मुख्तार श्री जुगलकिशोर जीकी आठ शंकाएँ प्रकाश में आई हैं जिनका समाधान मेरी दृष्टिसे निम्न प्रकार है—

आठ शंका

(१) आत्माको अबद्धस्पृष्ट, अनन्य और अविशेषरूपसे देखने पर सारे जिनशासनको कैसे देखा जाता है ?

(२) उस जिनशासनका क्या रूप है जिसे उस द्रष्टाके द्वारा पूर्णतः देखा जाता है ?

(३) वह जिनशासन श्रीकुन्दकुन्द, समन्तभद्र, उमास्वाति और अकलंक जैसे महान् आचार्योंके द्वारा प्रतिपादित अथवा संसूचित जिनशासनसे क्या कुछ भिन्न है ?

(४) यदि भिन्न नहीं है तो इन सबके द्वारा प्रतिपादित एवं संसूचित जिनशासनके साथ उसकी संगति कैसे बैठती है ?

(५) इस गाथामें 'अपदेससंतमज्झं' नामक जो पद पाया जाता है और जिसे कुछ विद्वान् अपदेससुत्तमज्झं' रूपसे भी उल्लेखित करते हैं, उसे 'जिणशासणं' पदका विशेषण बतलाया जाता है और उससे द्रव्य-श्रुत तथा भावश्रुतका भी अर्थ लगाया जाता है, यह सब कहाँ तक संगत है अथवा पदका ठीक रूप, अर्थ और सम्बन्ध क्या होना चाहिए ?

(६) श्रीअमृतचन्द्राचार्य इस पदके अर्थ विषयमें मौन हैं और जयसेनाचार्यने जो अर्थ किया है वह पदमें प्रयुक्त हुए शब्दोंको देखते हुए कुछ खटकता हुआ जान पड़ता है, यह क्या ठीक है अथवा उस अर्थमें खटकने जैसी कोई बात नहीं है ?

(७) एक सुझाव यह भी है कि यह पद 'अपवेससंत-मज्झं (अप्रवेशसान्तमध्यं) है, जिसका अर्थ अनादि-मध्यान्त होता है और यह 'अप्पाणं (आत्मानं) पदका विशेषण है, न कि जिणशासणं पदका। शुद्धात्माके लिये स्वामी समन्तभद्रने रत्नकरण्ड (६) में और सिद्धसेनाचार्यने स्वयम्भूस्तुति (प्रथमद्वात्रिंशिका १) में 'अनादिमध्यान्त' पदका प्रयोग किया है। समयसारके एक कलशमें अमृतचन्द्राचार्यने भी 'मध्याद्यन्तविभागमुक्त' जैसे शब्दों द्वारा इसी बातका उल्लेख किया है। इन सब बातोंको भी ध्यानमें लेना चाहिये और तब यह निर्णय करना चाहिये कि क्या उक्त सुझाव ठीक है ? यदि ठीक नहीं है तो क्या ?

(८) १४वीं गाथामें शुद्धनयके विषयभूत आत्माके लिए पाँच विशेषणोंका प्रयोग किया गया है, जिनमेंसे कुल तीन विशेषणोंका ही प्रयोग १५ वीं गाथामें हुआ है, जिसका अर्थ करते हुए शेष दो विशेषणों-'नियत और असंयुक्त' को भी उपलक्षणके रूपमें ग्रहण किया जाता है; तब यह प्रश्न पैदा होता है कि यदि मूलकारका ऐसा ही आशय था तो फिर इस १५ वीं गाथामें उन विशेषणोंको क्रमभंग करके रखनेकी क्या जरूरत थी ? १४वीं गाथा * के पूर्वार्धको ज्योंका त्यों रख देने पर भी शेष दो विशेषणोंको उपलक्षणके द्वारा ग्रहण किया जा सकता था। परन्तु ऐसा नहीं किया गया; तब क्या इसमें कोई रहस्य है, जिसके स्पष्ट होने की जरूरत है ? अथवा इस गाथाके अर्थमें उन दो विशेषणोंको ग्रहण करना युक्त नहीं है ?

---

१ * उक्त १४ वीं गाथा इस प्रकार है—

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं ।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥ १४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाधान

(१) समाधान—समयसार ग्रन्थकी १५वीं गाथामें जो अबद्धस्पृष्ट प है—इसमें बद्धके साथ स्पृष्टका निषेध किया गया है। जब बद्धस्पृष्ठके कारण आस्रव तथा उसके विरोधको संवर, बद्धस्पृष्टके एक देश क्षयके कारण निर्जरा और बद्धस्पृष्टके निरवशेष रूपसे आत्मासे दूर होने या क्षय होनेको जाने तब आत्माके अबद्धस्पृष्ट स्वरूपका ठीक बोध हो बंध प्रकृतमें अजीवके साथ जीवका है, अतः अजीवका ज्ञान होना भी अत्यावश्यक है—उनके लक्षणों को विशेष प्रकारसे जानने पर ही आत्माका अनन्य रूपसे बोध होता है—जब यह अविशेषकी निष्ठाको जान लेता है तब वह अविशेष रूप आत्माको जानता है—चूंकि सामान्य विशेष-निष्ठा आश्रयमें रहता है—इस प्रकार प्रयोजन भूत सात तत्त्व जोकि जिनशासन रूप हैं या जिन शासनमें बतलाये गये हैं—इनको गुणस्थान मार्गणास्थान आदिकके विवेचनसे—या दया, दम, त्याग, समाधिरूप विवेचनसे—जो जानता है वह तत्त्वार्थ श्रद्धान करने वाला होने पर वास्तवमें आत्मा को जानने वाला सारे जिनशासनको जानता है—जो भी द्रव्य-श्रुतरूप स्याद्वाद शासनमें या भावश्रुतमें जो भी प्रकाशित होता है वह सात तत्त्व रूपसे बतलाया जाता है या जाना जाता है—जो प्रयोजन भूत आत्माको जानता है वह प्रयोजनभूत सात तत्त्वको बतलाने वाले जिन शासनको भी प्रयोजनभूत रूपसे अवश्य पूर्णरूपसे जानता है। जो प्रयोजनभूत जिनशासनको पूर्णतया नहीं जानता है वह आत्माको भी नहीं जानता है या यथार्थ रूपसे नहीं जानता है—'अपदेशसुत्तमज्झं जिनसासणं' द्रव्यश्रुतमें बतलाये गये जिन-शासनको, आत्माको यथार्थरूपसे जाननेवाला या अनुभव करने वाला या देखने वाला अवश्य पूर्णरूपसे जानता है जो कि प्रयोजन भूत है—आत्माको पूर्ण रूप-से सब गुणपर्यायों सहित जो जान लेता है वह सर्वज्ञ है चूंकि किसी भी पदार्थका पूर्णज्ञान सर्वज्ञको होता है—उसने तो अवश्य ही सारे जिनशासनको जाना ही है—किन्तु श्रुतज्ञानसे युक्त छद्मस्थ भी सारे जिनशासनको कुछ गुणपर्याय सहित प्रयोजनभूत रूपसे अवश्य जानता है यदि वह सम्यक्त्वी है, जो सम्यक्त्वी है वही सात तत्त्व-को जानने वाले अपने आत्माका छद्मस्थ अवस्थामें अनुभव करता है इसलिये आत्माको जानने वाला सारे जिन-शासनको पूर्ण रूपसे अवश्य जानता है जो कि प्रयोजन भूत है। प्रयोजनभूत जिनशासनका जो प्रयोजनभूत-रूपसे श्रुतज्ञान होता है वह प्रयोजनभूत श्रुतज्ञान भी छद्मस्थका पर्याय है अतः जो आत्माको प्रयोजनभूत रूपसे उक्त तीन विशेषणोंसे अबद्धस्पष्ट अनन्य-विशेष अविशेष—सामान्यरूपसे जानता है— वह प्रयोजनभूत जिनशासनको पूर्ण रूपसे जानता है अर्थात् जो समय-सारके सम्पूर्ण प्रयोजनभूत अधिकारोंको सामान्य विशेष रूपसे जानता है वास्तवमें वह समयसारको तत्त्वतः जानता है और जो समयसारको तत्त्वतः जानता है वह निरस्ताग्रह सारे जिनशासनको कुछ गुणपर्यायों सहित जानता है चाहे वह द्रव्यश्रुतमें कहा गया हो या स्याद्वादरूपसे बतलाया गया हो या भावश्रुतसे जाना गया हो।

भाव श्रुतज्ञान आत्माका पर्याय है अतः आत्माको जानने वाला सम्यग्दृष्टि छद्मस्थ अवश्य उस (श्रुतज्ञान) के द्वारा जाने गये प्रयोजनभूत पूर्ण जिनशासनको जानता है—प्रकृतमें आत्माको जानने वाला ज्ञान परोक्ष है—वह न्यायशास्त्रकी अपेक्षा छद्मस्थका आत्मानु-भव या ज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष हो सकता है।

(२) समाधान—'स्याद्वाद' जिनशासनमें छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व और नौ पदार्थ बतलाए गये हैं—ये सब जीव और अजीवके विशेष हैं। जीव और अजीवके विशेष आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष हैं। सात तत्त्वोंका विवेचन करने वाला तत्त्वार्थसूत्र इनमें आ गया है और उस सूत्र द्वारा निर्दिष्ट सम्पूर्ण प्रमेय भी सात तत्त्वका अति वर्तन नहीं करते हैं। वे सब सामान्य-विशेषात्मक जात्यन्तर हैं—इन सातोंमेंसे प्रयोजन भूत एक तत्त्वका पूरा ज्ञान तब होता है जब सातोंका ज्ञान हो, अतः आत्माका सम्यग्बोध उसीको होता है जो प्रयोजन भूत रूपसे इन सातोंको जान कर श्रद्धान करता है। छह द्रव्य, पंचास्तिकाय और नौ पदार्थ इन्हीं सात तत्त्वोंमें अन्तरभूत हैं—स्याद्वाद श्रुतज्ञान इनको जानता है और स्याद्वाद द्रव्यश्रुत इनका विवेचन करता है। स्याद्वाद और उसका अन्यतम प्रमेय सामान्य विशेषात्मक है अतः सम्पूर्ण जिन शासन सामान्य विशेषषात्मक है—कहा भी है 'अभेद भेदात्मकमथतत्त्वं, तव स्वतन्त्रमंत्रा-यत्तरत्ख-पुष्पम् इस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयमें प्रमेयकमलमार्तण्ड देखें। उक्त दो चरण युक्त्यनुशासनके हैं जो कि संस्कृतमें उद्धृत हैं।

(३) समाधान—वह जिनशासन श्रीकुन्दकुन्द, समन्तभद्र, उमास्वाति—गृद्धपिच्छाचार्य, और अकलङ्क जैसे महान् आचार्योंके द्वारा प्रतिपादित अथवा संसूचित जिनशासनसे कोई भिन्न नहीं है।

(४) इन सबके द्वारा प्रतिपादित एवं संसूचित जिनशासनके साथ उसकी संगति बैठ जाती है चूंकि कहीं पर किसीने संक्षिप्त रूपसे वर्णन किया है तो किसीने विस्तारसे, किसीने किसी विषयको गौण और किसीको प्रधान रूपसे वर्णन किया है—जैसे कि समयसारमें आत्माकी मुख्यतासे वर्णन है यद्यपि शेष तत्त्वोंका भी प्रासंगिक रूपसे गौणतया वर्णन है—जीव द्रव्यका विशद विवेचन जीवकाण्डमें मिलेगा। बन्धका अत्यन्त विस्तार पूर्वक वर्णन महाबन्धमें मिलेगा। किसीने किसी भङ्गका छन्दके कारण पहले वर्णन किया तो किसीने बादमें, तो भी भंग तो सात ही माने हैं किसीने एव' कार लिखा है तो किसीने कहा कि उसे आशयसे जान लेना चाहिये या प्रतिज्ञासे जान लेना चाहिए 'स्याद्', पदके प्रयोगके विषयमें भी उक्त मन्तव्य चरितार्थ होता है संग्रह, व्यवहार, और ऋजुसूत्र इन तीन नयोंके प्रयोगसे सामान्य विशेष और अवाच्यकी या विधि, निषेध और अवाच्यकी या नित्य, अनित्य और अवाच्यकी या व्यापक, व्याप्य और अवाच्यकी योजना करना चाहिये न कि सर्वथा-आग्रहसे। उभय नामका भंग, नैगमनयसे योजित करना चाहिये। संग्रह, व्यवहार और उभयके साथमें ऋजूसूत्रकी योजना करके शेष तीन संग्रह-अवाच्य व्यवहार-अवाच्य और उभय-अवाच्य भङ्ग, नययोगसे लगाना चाहिये न कि सर्वथा—विना सामान्यकी निष्ठाको समझे सामान्यका सच्चा ज्ञान नहीं होता है। चूंकि निर्विशेष सामान्य गधेके सींगके समान है। जब सामान्य है तो वह विशेष रूप आधारमें—निष्ठामें रहता है अतः संक्षिप्तसे वह सारा शासन सामान्य और विशेष आत्मक है उसीको प्रामाणिक आचार्योंने बतलाया है। अतः समयसार पढ़ कर निरस्ताग्रह होना चाहिये न कि दुराग्रही—उन्मत्त। इसी प्रकार अन्य किसी भी न्याय या सिद्धान्तको पढ़ कर या किसी भी अनुयोगको पढ़ कर बुद्धिमें और आचरणमें अपने योग्य समत्व और सौम्यताके दर्शन होना चाहिये। यदि दुरभिनिवेशका या सर्वथा आग्रहरूपभावका अन्त न हुआ तो ये सब समीचीनशास्त्र जन्मान्धके नेत्रों पर चश्मा लगानेके समान हैं—जो निरस्ताग्रह नहीं होता है वह प्रकृतमें जन्मान्ध तुल्य है चूंकि स्याद्वाद रूप सफेद चश्मा उसको यथार्थ वस्तुस्थिति देखनेमें निमित्त कारण नहीं हो रहा है। यदि वह निमित्त कारण उसके देखनेमें है तो वह जन्मान्ध नहीं है। सम्पूर्ण द्वादशांग या उसके अवयव आदिक रूप समयसारादिक स्याद्वाद रूप हैं अतः वे सब महान आचार्यों द्वारा कहे गये ग्रन्थ सत्यके आधार पर ही हैं।

(५-६) समाधान—'अपदेससुत्तमज्झ सव्वं जिणसासणं' द्रव्य श्रुतमें रहने वाले सम्पूर्ण जिनशासनको' यह उक्त पाठका अर्थ होनेसे पाठ शुद्ध है। अथवा द्रव्यश्रुतमें विवेचना रूपसे पाए जाने वाले सम्पूर्ण जिनशासनको' यह अर्थ ले लेवें। अथवा सप्तमी अर्थमें द्वितीयका प्रयोग मानकर उसको—'जिणसासणं' का विशेषण न रख कर प्रकृत तीन विशेषणोंसे युक्त आत्माको बतलाने वाले इस गाथा रूप द्रव्यश्रुतमें या इसके निमित्तसे होने वाले भावश्रुतमें सम्पूर्ण जिनशासनको देखता है जो कि उक्त तीन विशेषणोंसे विशिष्ट आत्माको सम्यग् प्रकारसे जानता देखता या अनुभव करता है। अतः 'अपदेससुत्तमज्झं' पाठ सगत है और खटकने सरीखा नहीं है—भले ही यहाँ 'अपवेससन्तमज्झं' वाले पाठकी संगति किसीने तात्पर्यभावसे रक्खी हो। किन्तु प्राचीनतम प्रतिमें जो 'अपदेससुत्तमज्झं' पाठ है तो अन्य पाठकी संगति से क्या?

(७) समाधान—इस विषयमें मूल प्राचीनतम प्रतियोंकी देखना चाहिये और इस समयसार पर आ. प्रभाचन्द्रका समयसारप्रकाश नामक व्याख्यान देखना चाहिये—जो कि सेनगण मन्दिर कारंजामें है—जयसेनाचार्यके सामने 'अपदेससुत्तमज्झं'—यह पाठ था आ. अमृतचन्द्रके सामने यह पाठ नहीं था यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता है। 'अपवेससन्तमज्झं' इस पाठको आत्माका भी विशेषण बनाया जा सकता है और जिनशासनका भी चूंकि जिनशासन भी प्रवाहकी अपेक्षासे अनादिमध्यान्त है। संभव है कि—सुत्तमें से 'उ' के नहीं लिखे जानेसे 'अपदेससंतमज्झं' पाठ हो गया हो। और किसीने उसकी शुद्धिके लिये 'द' को 'व' पढ़ा हो तब वह 'अपवेससंतमज्झं' हो गया हो। दोनों पाठ शुद्ध हैं चाहे दोनोंमेंसे कोई हो किन्तु 'अपदेशसुत्तमज्झं' ही उसका मूल पाठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होना चाहिये चूंकि जयसेनाचार्यने पाठको सुरक्षित रक्खा है।

(८) समाधान—जो अर्थ अनन्य विशेषणका है वह विशेष है और सामान्य अर्थका सूचक पद अविशेष है। वैसा अर्थ न तो नियत पदमें है जो कि क्षोभ रहित अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और न असंयुक्त—शब्दमें चूंकि १४ वीं गाथामें उसका प्रयोग अमिश्रित अर्थमें हुआ है—इसी लिए अविशेष शब्दका प्रयोग हुआ है। स्पष्ट अर्थमें आचार्यवर्यको यह बताना था कि आत्माको अबद्ध तथा विशेष और सामान्य दोनों प्रकारसे देखना चाहिये चूंकि आत्माको विना पूर्वोक्तरीत्या देखे वह जिनशासनका पूर्ण ज्ञाता नहीं कहा जा सकता था जो कि प्रकृत अपदेशसूत्रके मध्यमें निर्दिष्ट है—समयसारके सम्पूर्ण अधिकारोंका विवेचन इसी मूल गाथाकी भित्ति पर है यदि उसके अंतः परीक्षणसे काम लिया जावे। समयसार कलशका मंगलाचरण भी इस गाथाकी ओर इशारा करके बतला रहा है कि 'सर्वभावान्तरच्छिदे' ऐसे समयसारके लिये ही हमारा अंतःकरणसे नमस्कार है—न कि दुराग्रहके दलदलके प्रति। असंयुक्त और नियतपद १५ वीं गाथामें आवश्यक न थे—चूंकि सारा जिनशासन जो सातत्त्वको बतलाने वाला है वह समान्य विशेष आत्मक है अतः प्रकृतमें अविशेष पद रक्खा गया है। यहाँ उपलक्षण वाले झमेलेसे क्या जब कि वह नियत पद प्रकृत 'अविशेष' अर्थका घातक नहीं हो सकता है चूंकि वह पूर्व गाथामें अक्षुब्ध अर्थमें प्रयुक्त हुआ है—उसका अर्थ मोह और राग द्वेष रहित अवस्था विशेष है उससे मुक्त आत्माको बतलाना इष्ट था। किन्तु प्रकृतमें ऐसा अर्थ आचार्यवर्यको इष्ट नहीं था इसी लिए वह नियत पद अविशेषके स्थान पर रक्खा गया, नकि उपलक्षण रूप वह बनाया गया। १४वीं गाथामें शुद्धनयके विषयभूत आत्माको पाँच विशेषणोंसे युक्त बतलाया है—उसका अर्थ यह है कि शुद्ध नय कभी अबद्ध देखता है। कभी दूसरे रूप नहीं है—अनन्य है इस प्रकार देखता है, कभी मोह क्षोभ रहित नियत देखता है, कभी वह ज्ञान, दर्शन, सुख इत्यादिक भेद न करते हुए, ज्ञाता रूपसे देखता कि ज्ञान भी आत्मा है सुख भी आत्मा है इत्यादि और कभी वह शुद्धनयसे आत्माको दूसरे द्रव्यादिकके मिश्रणसे रहित असंयुक्त देखता है—किन्तु १५ वीं गाथामें तो सारे जिनशासनको देखनेका कहा है। अतः १५ वीं गाथाका विवेचन अपने विशिष्ट विवेचनसे अत्यन्त गम्भीर और विस्तृत हो गया है जो शुद्ध अशुद्ध आदिकको जानने वाला ज्ञाता-सप्ततत्त्व दृष्टा है उसको केवल सामान्य ही नहीं विशेष भी जाननेको कहा है दोनोंको प्रधान रूपसे जानने वाला ज्ञान प्रमाण है प्रकृतमें वही यहाँ इष्ट है जो आत्मरूप है। आगे इस पर और भी अधिक विस्तारसे अन्य लेखोंमें विचार किया गया है।

'अनेकान्त' की पुरानी फाइलें

'अनेकान्त' की कुछ पुरानी फाइलें वर्ष ४ से ११ वें वर्षतक की अवशिष्ट हैं जिनमें समाजके लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों द्वारा इतिहास, पुरातत्त्व, दर्शन और साहित्यके सम्बन्धमें खोजपूर्ण लेख लिखे गये हैं और अनेक नई खोजों द्वारा ऐतिहासिक गुत्थियोंको सुलझानेका प्रयत्न किया गया है। लेखोंकी भाषा संयत सम्बद्ध और सरल है। लेख पठनीय एवं संग्रहणीय हैं। फाइलें थोड़ी ही रह गई हैं। अतः मंगाने में शीघ्रता करें। फाइलों को लागत मूल्य पर दिया जायेगा। पोस्टेज खर्च अलग होगा।

मैनेजर—'अनेकान्त'

वीरसेवामन्दिर, १ दरियागंज, दिल्ली।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारी तीर्थयात्राके संस्मरण

(लेखक : परमानन्द जैन शास्त्री)

श्रवणबेलगोलसे चलकर हम लोग हासन आए। हासन मैसूर स्टेटका एक जिला है। यहाँ वनवासीके कदम्बवंशी राजाओंने चौथी पांचवीं शताब्दीसे ११ वीं शताब्दी तक राज्य किया है। यहांका अधिकांश भाग जैन राजाओंके हाथमें रहा है। इस जिलेमें पूर्वकालमें जैनियोंका बड़ा भारी अभ्युदय रहा है। वह इस जिलेमें उपलब्ध मूर्तियों, शिलालेखों ग्रन्थभंडारों और दानपत्रों आदिसे सहजही ज्ञात हो जाता है। हासनमें ठहरनेका कोई विचार नहीं था किन्तु रोड टैक्सको जमा करनेके लिए रुकना पड़ा। यहां केवल लारीका ही टैक्स नहीं लिया जाता किन्तु सवारियोंसे भी फी रुपया सवारी टैक्स लिया जाता है। इसमें कुछ अधिक विलम्ब होते देख म्युनिस्पल कमेटीके एक बागमें हम लोगोंने आज्ञा लेकर भोजनादिका कार्य शुरु किया। मैं और मुख्तार साहब नहा-धोकर शहरके मंदिरमें दर्शन करनेके लिए गए। शहरमें हमें पासहीमें दो जिन मन्दिर मिले। जिनमें अन्य तीर्थंकर प्रतिमाओंके साथ मध्यमें भगवान पार्श्वनाथकी मूर्ति विराजमान थी। दर्शन करके चित्तमें बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु यहाँ और कितने मन्दिर हैं, यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका और न वहाँ के जैनियोंका ही कोई परिचय प्राप्त हो सका। जल्दीमें यह सब कार्य होना संभव भी नहीं है। मन्दिरजीसे चलकर कुछ शाक-सब्जी खरीदी और भोजन करनेके बाद हम लोग १ बजेके करीब हासनसे २४ मील चलकर बेलूर आए। यह वही नगर है, जिसे दक्षिण काशी भी कहा जाता था; क्योंकि यहां होयसल राजा विष्णुवर्द्धनने जैनधर्मसे वैष्णवधर्मी होकर 'चेन्न केशव' का विशाल एवं सुन्दर मन्दिर बनवाया था। बेलूरसे ११ मील पूर्व चलकर हम लोग 'हलेबीडु' आये। इसे दोर या द्वारसमुद्र भी कहा जाता है।

'हलेबीडु' पूर्व समयमें जैनधर्मका केन्द्रस्थल रहा है किसी समय यह नगर जन धनसे समृद्ध रहा है और इसे होयसल वंशके राजा विष्णुवर्द्धनकी राजधानी बननेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। राजा विष्णुवर्द्धनकी पट्टरानी जैनधर्म-परायणा, धर्मनिष्ठा, व्रत-शीला, मुनिभक्ता, चतुर्विध दान देनेमें दक्ष और विनयादि सद्गुणोंसे अलंकृत, प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेवकी शिष्या थी, जो मूलसंघ देशीयगण पुस्तकगच्छके विद्वान् आचार्य मेघचन्द्र त्रैविद्यदेवके शिष्य थे, जिनका स्वर्गवास शक सं० १०३७ (वि० संवत् ११७२) में मगशिर सुदि १४ बृहस्पतिवारके दिन सद्ध्यानसहित हुआ था। उनके शिष्य प्रभाचंद्र सिद्धांतदेवने महादण्डनायक गंगराज द्वारा उनकी निषद्या बनवाई थी*। जिनकी मृत्यु शक संवत् १०६८ (वि० संवत् १२०३) में आश्विन सुदि १० बृहस्पतिवारके दिन हुई थी ×। शान्तलदेवीके पिताका नाम 'मारसिङ्गय्य और माताका नाम माचिकब्बे था। इनकी मृत्यु शान्तलदेवीके बाद हुई थी। शान्तलदेवीने शक सं० १०५० (वि० सं० ११८५) में चैतसुदि ५ के दिन शिवगङ्गे' नामक स्थानमें शरीरका त्याग किया था†।

राजा विष्णुवर्द्धन एक वीर एवं पराक्रमी शासक था। इसने मांडलिक राजाओं पर विजय प्राप्त की थी और अपने राज्यका खूब विस्तार किया था। पहले इस राजाकी आस्था जैनधर्मपर थी किन्तु सन् १११७ में रामानुजके प्रभावसे वैष्णवधर्म स्वीकार कर लिया था, और उसीकी स्मृतिस्वरूप बेलूरमें विष्णुवर्द्धनने केशवका विशाल मंदिर भी बनवाया था। यह मन्दिर देखने योग्य है। कहा जाता है कि जैनियोंके ध्वंस किए गए मन्दिरोंके पत्थरोंका उपयोग इसके बनानेमें किया गया है। उस समय हलेविडमें जैनियोंके ७२० जिनमन्दिर थे। जैनधर्मका परित्याग करनेके बाद विष्णुवर्द्धनने उन जैनमन्दिरोंको गिरवा कर नष्ट-भ्रष्ट करवा दिया था, इतना ही नहीं; किन्तु उस समय इसने अनेक प्रसिद्ध २ जैनियोंको भी मरवा दिया था और उन्हें अनेक प्रकारके कष्ट भी दिये थे, जैनियोंके साथ उस समय भारी अन्याय और अत्याचार किये गए थे जिनका उल्लेख कर मैं समाजको शोकाकुल नहीं बनाना चाहता

*देखें, जैन शिलालेख संग्रह भाग १, लेख नं. ४७ (१२७)।
×शिलालेख नं० ५०(१४०)।
†शिलालेख नं० ५३ (१४३)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हां, 'स्थल पुराण' के कथनसे इतना अवश्य ज्ञात होता है कि विष्णुवर्द्धनके द्वारा जैनियों पर किये गए अत्याचारोंको पृथ्वी भी सहन करनेमें समर्थ नहीं हो सकी। फलस्वरूप हलेविडके दक्षिणमें अनेकवार भूकम्प हुए और उन भू-कम्पोंमें पृथ्वीका कुछ भू-भाग भी भू-गर्भ में विलीन हो गया, जिससे जनताको अपार जन-धनकी हानि उठानी पड़ी। इन उपद्रवोंको शान्त करनेके लिये यद्यपि राजाने अनेक प्रयत्न किये, अनेक शान्ति-यज्ञ कराये और प्रचुर धन-व्यय करने पर भी राजा वहाँ जब प्रकृतिके प्रकोपजन्य उपद्रवोंको शांत करनेमें समर्थ न हो सका। तब अन्तमें मजबूर होकर विष्णुवर्द्धनको श्रवणबेलगोलके तत्कालीन प्रसिद्ध आचार्य शुभचन्द्रके पास जा कर क्षमा याचना करनी पड़ी। आचार्य शुभचन्द्र* राजाके द्वारा किये गए अत्याचारोंको पहलेसे ही जानते थे। प्रथम तो उन्होंने राजाकी उस अभ्यर्थनाको स्वीकार नहीं किया; किन्तु बहुत प्रार्थना करने या गिड़-गिड़ानेके पश्चात् राजा को क्षमा किया। राजाने जैनधर्मके विरोध न करनकी प्रतिज्ञा की और राज्यकी ओरसे जैनमन्दिरों एवं मठोंको पूजादि निमित्त जो दानादि पहले दिया जाता था उसे पूर्ववत् देनेका आश्वासन दिलाया तथा उक्त कार्योंके अनन्तर शान्तिविधान भी किया गया।

विष्णुवर्द्धनके मंत्री और सेनापति गंगराज तथा हुल्लाने उस समय जैनधर्मका बहुत उद्योत किया, अनेक जिन मन्दिर बनवाए और मन्दिरोंकी पूजादिके निमित्त भूमिके दान भी दिये। श्रवणबेलगोल आदिके अनेक शिलालेखोंसे गंगराज और हुल्लाकी धर्मनिष्ठा और कर्तव्य-परायणताके उल्लेख प्राप्त हैं जिनसे उनके वैयक्तिक जीवन-की झांकीका भी दिग्दर्शन हो जाता है। विष्णुवर्द्धनने शक सं० १०३३ (वि० सं० ११६८ से शक संवत् १०६३ (वि० स० ११९५) तक राज्य किया है। हलेविडमें इस समय जैनियोंके तीन मन्दिर मौजूद हैं पार्श्वनाथवस्ति, आदिनाथवस्ति और शान्तिनाथवस्ति, जिनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है:—

१ पार्श्वनाथवस्ति—हलेविडकी इस पार्श्वनाथबस्तिको शक सं० १०५५ (वि० सं० ११९०) में बोप्पाने अपने स्वर्गीय पिता गङ्गराजकी पुण्य-स्मृतिमें बनवाया था। इस मन्दिरमें पार्श्वनाथ भगवानकी १४ फुट ऊँची काले पाषाणकी मनोज्ञ एवं चित्ताकर्षक तथा कलापूर्ण मूर्ति विराजमान है। इस मूर्तिके दोनों ओर धरणेन्द्र और पद्मावती उत्कीर्णित हैं। मन्दिर ऊपरसे साधारणसा प्रतीत होता है; परन्तु अन्दर जाकर उसकी बनावटको देखनेसे उसकी कलात्मक कारीगरीका सहजही बोध हो जाता है इस मन्दिरमें कसौटी पाषाणके सुन्दर चौदह खम्भे लगे हुए हैं उनमेंसे आगेके दो खम्भोंपर पानी डालनेसे उनका रंग काले से हरा हो जाता है। मुख्य द्वारके दाहिनी ओर एक यक्षकी मूर्ति और बाईं ओर कूष्मांडिनीदेवीकी मूर्ति है।

इस मन्दिरके बाहरकी दीवालके एक पाषाण पर संस्कृत और कनड़ी भाषाका एक विशाल शिलालेख अंकित है जिसमें इस मन्दिरके निर्माण कराने और प्रतिष्ठादि कार्य सम्पन्न किये जाने आदिका कितनाही इतिहास दिया हुआ है। उसमें गंगवंशके पूर्वजोंका आदि स्रोत प्रकट करते हुए उनके 'पोयसल' नाम रूढ होनेका उल्लेख भी किया गया है। उसी वंशमें विनयादित्य राजाका पुत्र एरेयंग था उसकी पत्नी एचलदेवीसे ब्रह्मा विष्णु और शिवकी तरह बल्लाल, विष्णु और उदयादित्य नामके तीन पुत्र हुए इनमें विष्णुका नाम लोकमें सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ। उसकी दिग्विजयों और उपाधियोंका वर्णन करनेके पश्चात् तलकाड, कोङ्ग, नङ्गलि, गङ्गवाडि, नोलम्बवाडि, मासवाडि, हुलिगेटे, हलसिगे वनवसे, हानुगल, अङ्ग, कुन्तल, मध्यदेश, काञ्ची, विनीत और मंदुरापर भी उनके अधिकारको सूचित किया है।

विष्णुवर्द्धनका पादपद्मोपजीवी महादंडनायक गंगराज था, जो अनेक उपाधियोंसे अलंकृत था, उसने अनेक ध्वस्त-

---

*यह शुभचन्द्राचार्य सम्भतः वे ही जान पड़ते हैं जो मूलसंघ कुन्दकुन्दन्वय देशीगण और पुस्तकगच्छके कुक्कुटासन मलधारिदेवके शिष्य थे और जिन्हें मंडलिनाड्के भुजबल गंग पेमार्दिदेवकी काकी एडवि डेमियक्कने श्रुतपंचमीके उद्यापनके समय, जो बलिकेरेके उत्तुंग चैत्यालय में विराजमान थे। धवलाटीकाकी प्रति समर्पित की गई थी। इन शुभचन्द्राचार्यका स्वर्गारोहण शक सं० १०४५ (वि० सं० ११८०) श्रावण शुक्ला १० मी शुक्रवारको हुआ था।

देखो, जैन शिलालेख संग्रह भा० १ ले० नं० ४३।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन मन्दिरोंका पुनः निर्माण कराया था और अपने दानोंसे ९६००० गंगवाडिको कोपणके समान प्रसिद्ध किया था। उक्त गंगराजकी रायमें सात नरक निम्न थे—झूठ बोलना, युद्धमें भय दिखाना, परदारारत रहना, शरणार्थियोंको आश्रय न देना, अधीनस्थोंको अपरितृप्त रखना, जिन्हें पासमें रखना आवश्यक है उन्हें छोड़ देना और अपने स्वामीसे विद्रोह करना।

उक्त सेनापति गङ्गराज और नागलदेवीसे 'बोप्प' नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके कुलगुरु गौतमगणधरकी परम्परामें प्रख्यात मलधारीदेवके शिष्य शुभचन्द्रदेव थे जो बोप्पदेवके गुरु थे, और बोप्पदेवके पूज्य गुरु गंगमडलाचार्य प्रभाचन्द्र सैद्धान्तिक थे। बोप्पदेवने दोर या द्वार समुद्रके मध्यमें अपने पिताकी पवित्र स्मृतिमें उक्त पार्श्वनाथ वस्तिका निर्माण कराया था। उसमें भगवान पार्श्वनाथकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा नयकीर्ति सिद्धान्तचक्रवर्तीके द्वारा शक सं० १०५५ (वि० सं० ११९४) में सोमवारके दिन सम्पन्न कराई गई थी, जो मूलसंघ कुन्दकुन्दान्वय देशीयगण पुस्तकगच्छके विद्वान थे। आगे शिलालेखमें बतलाया गया है कि हनसोगे ग्रामके समीपवर्ती इस द्रोह घरट्टजिनालयकी प्रतिष्ठाके बाद जब पुरोहित चढ़ाए हुए भोजनको बंकापुर विष्णुवर्द्धनके पास ले गए तब विष्णुवर्द्धनने मसण नामक आक्रमण करने वाले राजाको परास्त कर मार दिया और उसकी राज्यश्री जब्त कर ली। उसी समय उसकी रानी लक्ष्मीमहादेवीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो गुणोंमें दशरथ और नहुषके समान था। राजाने पुरोहितोंका स्वागत कर प्रणाम किया और यह समझ कर कि भगवानकी पार्श्वनाथ प्रतिष्ठासे युद्धविजय और पुत्रोत्पत्ति एवं सुख-समृद्धिके उपलक्षमें विष्णुवर्द्धनने देवताका नाम 'विजय पार्श्वनाथ' और पुत्रका नाम 'विजयनरसिंहदेव' रक्खा, और अपने पुत्रकी सुख-समृद्धि एवं शान्तिकी अभिवृद्धिके लिये 'आसन्दिनाड' के जावगल्का मन्दिरके लिये दान दिया, इसके सिवाय, और भी बहुतसे दान दिये। उक्त शिलालेखके निम्न पद्यमें 'विजयपार्श्वनाथ' की स्तुतिकी गई है वह पद्य इस प्रकार है:—

श्रीमन्नतेन्द्रमणिमौलिमरीचिमाला-
मालार्चिताय भुवनत्रयधर्म्मनेत्रे ।
कामान्तकाय जित-जन्मजरान्तकाय,
भक्त्या नमो विजय-पार्श्व-जिनेश्वराय ॥

इस पद्यमें बतलाया गया है कि इन्द्रके मस्तक पर लगे हुए मणियोंसे जटित मुकुटोंकी माला पंक्तिसे पूजित भुवनत्रयके लिये धर्मनेत्र, कामदेवका अन्त करने वाले जन्म जरा और मरणको जीतने वाले उन विजय पार्श्वनाथ जिनेन्द्रके लिये नमस्कार हो।

यह मन्दिर जितना सुन्दर बना हुआ है खेद है कि आजकल इस मन्दिरमें बिल्कुल सफाई नहीं है, उसमें हजारों चमगादड़ लटकी हुई हैं जिनकी दुर्गन्धिसे दर्शकका जी ऊब जाता है, और वह उससे बाहर निकलनेके जल्दी प्रयत्न करता है। मैसूर सरकारका कर्त्तव्य है कि वह उस मन्दिरकी सफाई करानेका यत्न करे। जब सरकार पुरातन धर्मस्थानोंको अपना रक्षक मानती है, ऐसी हालतमें उसके संरक्षणादिका पूरा दायित्व सरकार पर ही निर्भर हो जाता है। आशा है मैसूर सरकार इस सम्बन्धमें पूरा विचार करेगी।

२ आदिनाथवस्ति—दूसरा मन्दिर भगवान आदिनाथका है जिसे सन् ११०८ में हेगड़े मल्लिमोयाने बनवाया था।

३ शान्तिनाथवस्ति—तीसरा मन्दिर भगवान शांतिनाथका है। इस मन्दिरमें शान्तिनाथकी १४ फुट ऊंची खड्गासनमूर्ति विराजमान है। यह मन्दिर सन् १२०४ का बना हुआ है। इस मन्दिरमें एक जैन मुनिका अपने शिष्यको धर्मोपदेश देनेका बड़ा ही सुन्दर दृश्य अङ्कित है। मूर्तिके दोनों ओर मस्तकाभिषेक करनेके लिये सीढ़ी बनी हुई हैं। और मन्दिरके सामने वाले मानस्तम्भमें श्रीगोम्मटेश्वरकी मूर्ति विराजमान है।

हलेविडमें सबसे अच्छा दर्शनीय मन्दिर होयसलेश्वर का है। कहा जाता है कि इस कलात्मक मन्दिरके निर्माणकार्यमें ८६ वर्षका समय लगा है। फिर भी वह अधूरा ही है—उसका शिखर अभी तक भी पूरा नहीं बन सका है पर यह मन्दिर जिस रूपमें अभी विद्यमान है वह अपनी ललित कलामें दूसरा सानी नहीं रखता। इसकी शिल्पकला अपूर्व एवं बेजोड़ है। जिस चतुर शिल्पीने इसका निर्माण किया उसने केवल अपनी कलाकृतिका प्रदर्शन ही नहीं किया; प्रत्युत इन कलात्मक चीजोंके निर्माण द्वारा अपनी आन्तरिक प्रतिभाका सजीव चित्रण भी अभिव्यंजित किया है। इस मन्दिरकी बाह्य दीवालों पर हाथी, सिंह, और विभिन्न प्रकारके पक्षी, देवी देवता और ४०० फुटकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लम्बाईमें रामायणके सरस दृश्य भी अंकित किए गए हैं जो दर्शकोंको अपनी ओर आकर्षित किये विना नहीं रहते। खेद है! कि हलेविडमें आज जैनियोंकी आवादी नहीं है। वहाँ के ये कीर्ति–मन्दिर जैनधर्मकी गुण-गरिमा पर किसी समय इठलाते थे। पर आज यह नगर अपने गौरव हीन जीवन पर सिसकियाँ ले रहा है– दुःख प्रकट कर रहा है। सड़कसे दूर होनेके कारण यात्री वहाँ दर्शनार्थ बहुत ही कम जाते हैं। हलेविडसे चल कर हम लोगोंने रात्रि उलि-यूरमें धर्मशालाके पीछेके दहलानमें बिताई और सबेरे ४ बजेसे चल कर १०॥ बजेके करीब दुपहरके समय वेणूर (Venuru) पहुँचे।

यह ग्राम दक्षिण कनारामें हलेविडसे ६० मील दूर है और गुरपुर नदीके किनारे बसा हुआ है। यहाँ तालाबमें हम लोगोंने स्नान किया, बाहुबली और अन्य चार मंदि-रोंके दर्शन किये, तथा थोड़ा सा नास्ता किया। भिंडी तथा रमाशकी फली खरीदीं। यहा श्रवणबेल्गोलके भट्टारक चारुकीर्तिकी प्रेरणासे शक सं० १५२६ (वि० सं० १६६१) में चामुण्डरायके कुटुम्बी तिम्मराजने (Timmaraja) ने, जो अजलरका शासक था, बाहुबलीकी ३७ फुट ऊँची कार्योत्सर्ग मूर्तिकी प्रतिष्ठा कराई *। इस मूर्तिका ६०-वर्षमें एक बार मस्तिकाभिषेक होता है। इसके चारों ओर ७-८ फुट ऊँचा एक कोट भी है। उक्त तिम्मराजने एक मन्दिर शान्तिनाथका भी बनवाया था। इस मन्दिरमें शक सं० १५२६ (वि० सं० १६६१) का एक शिलालेख भी अंकित है। गोम्मटेश्वरकी यह मूर्ति गुरुपुर नदीके बायें तट पर प्राकारके अन्दर अत्यन्त मनोज्ञ जान पड़ती है। गोम्मेटेश्वरकी इस मूर्तिका पग ८ फुट ३ इंच लम्बा है। बाहुबलीकी मूर्तिके अतिरिक्त यहाँ चार मन्दिर और भी हैं। इसे शक सं० १५२६ में स्थानीय रानीने बनवाया है। १ विभिन्न वस्ति २ अक्किनगलेवस्ति ३ तीर्थंकर वस्ति— इस मन्दिरके शक सं० १५४६ के शिलालेखसे ज्ञात होता है कि इसे यहाँके स्थानीय राजाने बनवाया था। और ४शान्तिनाथ वस्ति। यहाँ के एक मन्दिरमें एक सहस्त्र मूर्ति-याँ विराजमान है, ऐसा वहांके पुजारीसे ज्ञात हुआ। वे देखनेमें भी आईं, परन्तु जल्दीमें कोई गणना नहीं की जा सकी। यहाँसे चल कर हम लोग २ बजेके करीब मूलबिद्री पहुँचे और वहांके राजा देवपालके पेलिस भवनमें ठहरे, भवनके इस हिस्से पर सरकारने कब्जा कर लिया है। आपके निजी भवनमें भी एक चैत्यालय है। शिलालेखोंमें मूलबिद्रीका प्राचीन नाम 'बिद्री' 'वेणुपुर' या 'वंसपुर' उल्लिखित मिलता है। इसे जैनकाशी भी कहा जाता है। यह नगर 'तुलु' या तौलव देशमें वसा हुआ है। इस देश-के बोलचालकी आम भाषा भी 'तुलु' है परन्तु व्यावहा-रिक भाषा कनाड़ी होनेके कारण इसे कर्नाटकदेश भी कहा जाता है। यह नगर किसी समय कर्नाटक देशके कांची राज्यमें शामिल भी था, जिसकी राजधानी वादामी थी, जो बीजापुर जिलेमें अवस्थित है। उसके बाद उत्तर कनाडा में स्थित कदम्बवंशी राजाओंने भी उस पर राज्य शासन किया है और सम्भवतः छठी शताब्दीके लगभग यह पूर्वी चालुक्य राजाओंके अधिकार में चला गया था। उस समय तक इस देशका राजधर्म जैनधर्म बना रहा, जब तक होयसालवंशके राजा विष्णुवर्द्धन और बल्लालने जैनधर्मका परित्यागकर वैष्णवधर्मको स्वीकार नहीं किया था। राजा विष्णुवर्द्धनके धर्मपरिवर्तन के कारण जैन राजा मैसूर ओडीयर स्वतन्त्र हो गए, उस समय उनका शासन कुछ ऐसा रहा जो दूसरे सम्प्रदायके लोगों पर विपरीत प्रभाव को अंकत कर रहा था। फलतः उस समय जैन धर्मकी स्थिति अस्थिर एवं कमजोर हो गई। उस समय उनके आधीन चौटर, बंगर और अजलर वगैरह प्रसिद्ध २ राजा थे। मूलबिद्रीमें चौटर जैन राजाओंका राज्य था, तब यह नगर चौटर राजाओंका प्रसिद्ध नगर कहा जाता था। अब भी यहां चौटरवंशी रहते हैं जिन्हें अंग्रेजी राज्यमें पेन्शन मिलती थी। नंदावरमें बंगर, अलदंगदीके अजलर और मुल्कीके सेवतर हुए। यहाँ राजाका पुराना महल भी है, जिसमें लकड़ी की छत पर बढ़िया खुदाई की गई है और भीतों पर अनेक चित्र भी उत्कीर्णित हैं।

दक्षिण तौलवदेशके अनेक राजाओंने यहां पर बहुतसे जिन मंदिर बनवाए हैं जिनकी संख्या १८० के करीब बतलाई जाती है। उनमें से १८ मंदिर मूलबिद्रीमें और १८ मंदिर कारकलके भी अन्तर्निहित हैं। इन सब मंदिरों और उस समयके राज्यों का इतिवृत्त मालूम करनेसे इस बातका सहज ही पता लग जाता है कि उस समय वहां जैनधर्मका कितना गहरा प्रभाव अंकित था। मूलविद्रीका नाम दक्षिणके अतिशय जैनतीर्थ क्षेत्रोंमें प्रसिद्ध है।

* See, Indian Antiquary V. 36
* See, mediaval Jainism P. 663

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुरुवस्ति—यहां के स्थानीय १८ मन्दिरों में सबसे प्राचीन 'गुरुवस्ति' नामका मंदिरही जान पड़ता है। कहा जाता है कि उसे बने हुए एक हजार वर्षसे भी अधिकका समय हो गया है। इस मन्दिरमें षट्खण्डागमधवला टीका सहित, कषायपाहुड जयधवला टीका सहित तथा महाबन्धादि सिद्धान्तग्रन्थ रहनेके कारण इसे सिद्धान्तवस्ति भी कहा जाता है। इस मन्दिरमें ३२ मूर्तियाँ रत्नोंकी और एक मूर्ति ताड़पत्रके जड़की इस तरह कुल ३३ अनर्घ्य मूर्तियाँ विराजमान हैं; जो चाँदी सोना, हीरा, पन्ना, नीलम, गरुत्मणि, वैडूर्यमणि, मूंगा, नीलम, पुखराज, मोती, माणिक्य, स्फटिक और गोमेधिक रत्नोंकी बनी हुई हैं। इस मंदिरमें एक शिलालेख शक संवत् ६३६ (वि० सं० ७७१) का है उससे ज्ञात होता है कि इस मन्दिरको स्थानीय जैन पंचोंने बनवाया था। इस मन्दिरके बाहरके 'गद्दके' मंडपको शक संवत् १५३७ (वि० सं० १६७२) में चोलसेट्टि नामक स्थानीय श्रेष्ठीने बनवाया था। इसी वस्तिके एक पाषाणपर शक सं० १३२१ (वि. सं. १४६४) का एक उत्कीर्ण किया हुआ एक लेख है जिसमें लिखा है कि इसे स्थानीय राजाने दान दिया। तीर्थंकर वस्तिके पास एक पाषाण स्तम्भके लेखमें जो शक सं० १२२६ (वि० सं० १३६४) में उत्कीर्ण हुआ है उक्त गुरुवस्तिको दान देनेका उल्लेख है। इस मंदिरकी दूसरी मंजिलपर भी एक वेदी है उसमें भी अनेक अनर्घ्य मूर्तियाँ विराजमान हैं। कहा जाता है कि कुछ वर्ष हुए जब भट्टारकजीने इसका जीर्णोद्धार कराया था, इसी कारण इसे 'गुरुवस्ति' नामसे पुकारा जाने लगा है। मुख्तारश्रीने मैंने और बाबू पन्नालालजी अग्रवाल आदिने इन सब मूर्तियोंके सानन्द दर्शन किये हैं जिसे पं० नागराजजी शास्त्रीने कराये थे और ताड़पत्रीय धवल ग्रन्थकी वह प्रति भी दिखलाई थी जिसमें संयत पद मौजूद है, पं० नागराजजीने वह सूत्र पढ़कर भी बतलाया था। इसी गुरुवस्तिके सामनेही पाठशालाका मन्दिर है जिसमें मुनिसुव्रतनाथकी मूर्ति विराजमान है।

दूसरा मन्दिर 'चन्द्रनाथ' का है जिसे त्रिलोकचूडामणि वस्ति' भी कहते हैं। यह मन्दिर भी सम्भवतः छहसौ वर्ष जितना पुराना है। यह मन्दिर तीन खनका है जिसमें एक हजार शिलामय स्तम्भ लगे हुए हैं। इसीसे इसे 'सावियकमंदवसदी' भी कहा जाता है। इस मन्दिरके चारों ओर एक पक्का परकोटा भी बना हुआ है। रानी भैरादेवीने इसका एक मंडप बनवाया था जिसे 'भैरादेवी मंडप' कहा जाता है उसमें भीतरके खम्भोंमें सुन्दर चित्रकारी उत्कीर्ण की गई है। चित्रादेवी मंडप और नमस्कार मंडप आदि छह मंडपोंके अनन्तर पंचधातुकी कायोत्सर्ग चन्द्रप्रभ भगवानकी विशाल प्रतिमा विराजमान है। दूसरे खंडमें अनेक प्रतिमाएँ और सहस्त्रकूट चैत्यालय है। तीसरी मंजिलपर भी एक वेदी है जिसमें स्फटिकमणिकी अनेक मनोज्ञ मूर्तियाँ हैं। इस मन्दिरमें प्रवेश करते समय एक उन्नत विशाल मानस्तम्भ है जो शिल्पकलाकी साक्षात् मूर्ति है। इस मन्दिरका निर्माण शकसंवत् १३५२ (वि० सं० १४८७) में श्रावकों द्वारा बनवाया गया है।

तीसरा मंदिर 'बडगवस्ति' कहलाता है, क्योंकि वह उत्तर दिशामें बना हुआ है इसके सामन भी एक मानस्तम्भ बना हुआ है। इसमें सफेद पाषाणकी तीन फुट ऊँची चन्द्रप्रभ भगवानकी अति मनोज्ञमूर्ति विराजमान है

शेटूवस्ति—इसमें मूलनायक श्री वर्धमानकी धातुमय मूर्ति विराजमान है। इस मन्दिरके प्राकारमें एक मंदिर और है जिसमें काले पाषाण पर चौबीस तीर्थंकरोंकी मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। इसके दोनों ओर शारदा और पद्मावतीदेवी की प्रतिमाएँ हैं।

हिरवेवस्ति—इस मंदिरमें मूलनायक शान्तिनाथ हैं। इस मन्दिरके प्राकारके अन्दर पद्मावतीदेवीका मंदिर है, जिसमें मिट्टीसे निर्मित चौवीस तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। पद्मावती और सरस्वति की भी प्रतिमाएँ हैं इसीसे इसे अम्मनवरवस्ति कहा जाता है।

बेटकेरिबस्ति—इसमें वर्धमान भगवानकी ५ फुट ऊँची मूर्ति विराजमान है।

कोटिवस्ति—इस मन्दिर को 'कोटि' नामक श्रेष्ठीने बनवाया था। इसमें नेमिनाथ भगवानकी खड्गासन एक फुट ऊँची मूर्ति विराजमान है।

विक्रम सेट्टिवस्ति—इस मंदिरका निर्माण विक्रमनामक सेठने कराया था। इसमें मूलनायक आदिनाथकी प्रतिमा है। अन्दर एक चैत्यालय है और जिसमें धातुकी चौबीस मूर्तियाँ विराजमान हैं।

लेप्यदवस्ति—इसमें मिट्टीकी लेप्य निर्मित चन्द्रप्रभकी मूर्ति विराजमान है। इस मूर्तिका अभिषेक वगैरह नहीं किया जाता। इस मंदिरमें लेप्प विमित ज्वालामालिनीकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक मूर्ति विराजमान है। मिट्टीकी मूर्तियोंके बनानेका रिवाज कबसे प्रचलित हुआ यह विचारणीय है।

कल्लुवस्ति—इसमें चन्द्रप्रभभगवानकी दो फुट ऊँची मूर्ति विराजमान है। कहा जाता है कि पहले इस मंदिरके भूगर्भमें ही सिद्धान्तग्रन्थ रखे जाते थे।

देरमसेट्टिवस्ति—इस मंदिरको 'देरम' नामक सेठने बनवाया था। मूलनायक मूर्ति तीनफुट ऊँची है इस मूर्तिके नीचे भागमें चौबीस तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। और ऊपरके खंडमें भगवान मल्लिनाथकी पद्मासन मूर्ति विराजमान है।

चोलसेट्टिवस्ति—इस मन्दिरको उक्त सेठने बनवाया था। इस मंदिरमें सुमति पद्मप्रभ और सुपार्श्वनाथकी चार चार फुट ऊँची मूर्तियाँ विराजमान हैं। इस मंदिरके आगे भागमें दायें बायें वाले कोठोंमें चौवीस तीर्थंकर मूर्तियाँ विराजमान हैं। इसीसे इसे 'तीर्थंकरवस्ति' कहा जाता है।

महादेवसेट्टिवस्ति—इस वस्तिके बनवाने वाले उक्त सेठ हैं। इसमें मूलनायक ५ फुट ऊँची मूर्ति विराजमान है।

बंकिवस्ति—इसे किसी बैंकम अधिकारीने बनवाया था। इस अनन्तनाथ भगवानकी मूर्ति विराजमान है।

केरेवस्ति—इस मन्दिरमें कालेपाषाणकी ५ फुट ऊँची मल्लिनाथ भगवानकी मूर्ति विराजमान है।

पडुवस्ति—इसमें मूलनायक प्रतिमा अनंतनाथ की है जो पद्मासन चारफुट ऊँची है। कहा जाता है कि पहले शास्त्रभण्डार इसी मन्दिरके भूमहमें विराजमान था, जो दीमकादिने भक्षणकर लुप्त प्राय: कर दिया था, उसीमेंसे अवशिष्ट ग्रंथोंकी सूचादिका कार्य आरा निवासी बाबू देवकुमारजीने अपने द्रव्यसे कराया था। बादमें वे सब ग्रन्थ मठमें विराजमान करा दिये गए हैं।

मठवस्ति—इस मन्दिरमें काले पाषाणकी पार्श्वनाथ की सुन्दर मूर्ति है।

यहाँ सुपारी नारियल कालीमिर्च और काजूके वृक्षोंके अनेक बाग हैं। कालीमिर्चका भाव उस समय ६) रुपया सेर था। धान भी यहाँ अच्छा पैदा होता है। यहाँ के चावलभी बहुत अच्छे और स्वादिष्ट होते हैं। यहाँ से भोजनकर ११ बजेके करीब चलकर हम लोग कारकल पहुँचे।

कारकल—यह नगर मद्रास प्रान्तके दक्षिण कर्नाटक जिलेमें अवस्थित है। कहा जाता है कि यह नगर विक्रमकी १३ वीं शताब्दीसे १७ वीं शताब्दी तक जन-धनसे सम्पन्न एव खूब समृद्धशाली रहा है। इसकी समृद्धिमें जैनियोंने अपना पूरा योग दान दिया था। उक्त शताब्दियोंमें कारकल भैररस नामक पाण्ड्य राजवंशके जैन राजाओंसे शासित रहा है। प्रारम्भमें यह राजवंश अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता था; परन्तु वह स्वतन्त्रता अधिक समय तक कायम न रह सकी। कारकलके इस पाण्ड्यवंशको विजयनगर और हायसल वंश तथा अन्य अनेक बलशाली शासक राजाओंकी अधीनता अथवा परतंत्रतामें रहना पड़ा। उस समय वहां जैनियोंका बहु संख्यामें निवास था और वहांके व्यापार आदिमें भी उनका विशेष हाथ था।

कारकलमें सन् १२६१ से सन् १५८६ तक पाण्ड्यचक्रवर्ती, रामनाथ, वीर पाण्ड्य और इम्मडि भैरवराय आदि जैन राजाओंने उस पर शासन किया है। भैररस राजा वीर पाण्ड्यने शक संवत् १३५३ (वि० सं० १४८८) में फाल्गुन शुक्ला द्वादशीके दिन वहांके तत्कालीन प्रसिद्ध राजगुरु भट्टारक ललितकीर्ति* जो मूलसंघ कुन्दकुन्दान्वय देशीयगण पुस्तकगच्छके विद्वान, देवकीर्तिके शिष्य थे और पनसोगेके निवासी थे, उनके द्वारा स्थिरलग्नमें बाहुबलीकी उस विशाल मूर्तिकी, जो ४१ फुट ५ इंच ऊँची थी—प्रतिष्ठा कराई गईथी। मूर्तिके इस प्रतिष्ठा महोत्सवमें विजय नगरके तत्कालीन शासक राजादेवराय (द्वितीय) भी शामिल हुए थे। कविचन्द्रमने अपने 'गोम्मटेश्वर चरित' नामक ग्रन्थमें बाहुबलीकी इस मूर्तिके निर्माण और प्रतिष्ठादि का विस्तृत परिचय दिया है जिसमें बतलाया गया है कि उक्त मूर्तिके निर्माणका यह कार्य युवराजकी देख-रेखमें

* भट्टारक ललितकीर्ति काव्य न्याय व्याकरणादि शास्त्रोंके अच्छे विद्वान एवं प्रभावशाली भट्टारक थे। इनके बाद कारकलकी इस भट्टारकीय गद्दी पर जो भी भट्टारक प्रतिष्ठित होता था, वह विद्वान ललितकीर्ति नामसे ही उल्लेखित किया जाता है। उक्त भ० ललितकीर्तिके अनेक शिष्य थे। कल्याणकीर्ति, देवचन्द्र आदि। इनमें कल्याणकीर्तिने, जिनयज्ञफलोदय (१३५०) ज्ञानचन्द्राभ्युदय, कामनकथे, अनुप्रेक्षे, जिनस्तुति, तत्त्वभेदाष्टक, सिद्धराशि, शोधर चरित (श० १३७५) और फणिकुमारचरितका (श० १३६४) रचनाकाल पाया जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्पन्न हुआ था। और बीच-बीचमें राजा स्वयं भी उपयोगी सलाह देता रहता था मूर्ति तैयार होने पर बीस पहियोंकी मजबूत एक गाड़ी तय्यार करा कर दस हजार मनुष्यों द्वारा मूर्तिको गाड़ी पर चढ़ाया गया था, जिसमें राजा; मंत्री, पुरोहित और सेनानायकके साथ जनसमुदायने जयघोषके साथ उस गाड़ीको खींचा था। और कई दिनोंके लगातार परिश्रमके बाद मूर्तिको अभिलषित स्थान पर बाईस खम्भोंके बने हुए अस्थायी मंडपमें विराजमान कर पाया था, मूर्तिकी रचनाका अवशिष्ट कार्य एक वर्ष तक बराबर वहीं होता रहा वहाँ ही मूर्ति पर लता बेल और नासादृष्टि आदिका वह कार्य सम्पन्न हुआ था। इस मूर्तिका कोई आधार नहीं है। मूर्ति सुन्दर और कलापूर्ण तो है ही, अतः अब इसकी सुरक्षाका पूरा ध्यान रखनेकी आवश्यकता है। क्योंकि यह राजा वीरपाण्ड्यकी भक्तिका सुन्दर नमूना है।

राजा इम्मडि भैरवरायने जो अपने समयका एक वीर पराक्रमी शासक था अपने राज्यको पूर्ण स्वतन्त्र बनानेके प्रयत्नमें सफल नहीं हो सका। यह राजा भी जिन भक्तिमें कम नहीं था। इसने शक सं० १२०८ (वि० सं० १६४३) में 'चतुर्मुखवसदि' नामका एक मन्दिर बनवाया था। यह मन्दिर कलाकी दृष्टिसे अनुपम है और अपनी खास विशेषता रखता है। इस मन्दिरका मूल नाम 'त्रिभुवन तिलक चैत्यालय' है। इस मन्दिरके चारों तरफ एक एक द्वार है जिनमेंसे तीन द्वारोंमें पूर्व, दक्षिण, उत्तरमें प्रत्येकमें अरहनाथ मल्लिनाथ और मुनिसुव्रत इन तीन तीर्थंकरोंकी तीन मूर्तियाँ विराजमान हैं। और पश्चिम द्वारमें चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी २४ मूर्तियां स्थापित हैं। इनके सिवाय दोनों मण्डपोंमें भी अनेक प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं। दक्षिण और वाम भागमें ब्रह्मयक्ष और पद्मावतीकी सुन्दर चित्तार्षक मूर्तियां हैं। मन्दिरकी दीवालों पर और खंभों पर भी पुष्पलता आदिके अनेक चित्र उत्कीर्णित हैं, जो उक्त राजाके कला प्रेमके अभिव्यंजक है। जैन राजाओंने सदा दूसरे धर्म वालोंके साथ समानताका व्यवहार किया है। राजाओं का वास्तविक कर्तव्य है कि वह दूसरे धर्मियोंके साथ समानताका व्यवहार करें, इससे उनकी लोकप्रियता बढ़ती है और राज्यमें सुख शान्तिकी समृद्धि भी होती है।

राजा इम्मडि भैरवराय समुदार प्रकृति था। उसने सन् १५८४ में शंकराचार्यके पट्टाधीश नरसिंह भारतीको राजधानीमें कुछ समय तक ठहरनेका आग्रह किया था, इस पर उन्होंने कहा कि यहाँ अपने कर्मानुष्ठानके लिये कोई देव मन्दिर नहीं है, अतः मैं यहाँ नहीं ठहर सकता। इससे राजाके चित्तमें कष्ट पहुँचा, और उसने वह अप्रतिष्ठित जैन मन्दिर जो नवीन उसने बनवाया था और जिसमें उक्त नरसिंह भारतीको ठहराया गया था, उसीमें राजाने 'शेषशायी अनन्तेश्वर विष्णु' की सुन्दर मूर्ति स्थापित करा दी थी। इससे भट्टारक जी रुष्ट हो गये थे अतः उनसे राजाने क्षमा माँगी, और एक वर्षमें उससे भी अच्छा जिन मन्दिर बनवानेकी प्रतिज्ञा ही नहीं की, किन्तु 'त्रिभुवनतिलक' नामक चैत्यालय एक वर्षके भीतर ही निमाण करा दिया। यह मन्दिर जैनमठके सामने उत्तर दिशामें मौजूद है। मठकी पूर्व दिशामें पार्श्वनाथ वस्ति है।

कारकलमें बाहुबलीकी उस विशाल मूर्तिके अतिरिक्त १८ मन्दिर और हैं। जिनकी हम सब लोगोंने सानन्द यात्रा की। उक्त पर्वत पर बाहुबलीके सामने दाहिनी ओर बाईं ओर दो मन्दिर हैं उनमें एक शीतलनाथका और दूसरा पार्श्वनाथका है।

कारकलका वह स्थान जहां बाहुबलीकी मूर्ति विराजमान है बड़ा ही रमणीक है। यह नगर भी किसी समय वैभवकी चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था। यहां इस वंशमें अनेक राजा हुए हैं जिन्होंने समयसमय पर जैनधर्मका उद्योत किया है। इन राजाओंकी सभामें विद्वानोंका सदा आदर रहा है। कई राजा तो अच्छे कवि भी रहे हैं। पाण्ड्य क्षमापतिने 'भव्यानन्द' नामका सुभाषित ग्रन्थ बनाया था और वीर पाण्ड्य 'क्रियानिघण्टु' नामका ग्रन्थ रचा था। इनके समयमें इस देशमें अनेक जैन कवि भी हुए हैं, ललितकीर्ति देवचन्द, कल्याणकीर्ति और नागचन्द्रआदि। इन कवियों और इन कृतियोंके सम्बन्धमें फिर कभी अवकाश मिलने पर प्रकाश डाला जायगा।

कारकलमें अनेक राजा ही शासक नहीं रहे हैं, किन्तु उक्त वंशकी अनेक वीराङ्गनाओंने भी राज्यका भार वहन करते हुए धर्म और देशकी सेवा की है। —क्रमशः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राष्ट्रकूटकालमें जैनधर्म

(ले० डा० अ० स० अल्तेकर, एम० ए० डी० लिट०)

दक्षिण और कर्नाटक अब भी जैनधर्मके सुदृढ़ गढ़ हैं। वह कैसे हो सका? इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिये राष्ट्रकूट वंशके इतिहासकी पर्यालोचन अनिवार्य है। दक्षिणभारतके इतिहासमें राष्ट्रकूट राज्यकालका (सं० ७५३–९७३ ई०) सबसे अधिक समृद्धिका युग था। इस कालमें ही जैनधर्मका भी दक्षिण भारतमें पर्याप्त विस्तार हुआ था। राष्ट्रकूटोंके पतनके बाद ही नये धार्मिक सम्प्रदाय लिङ्गायतोंकी उत्पति तथा तीव्र विस्तारके कारण जैनधर्मको प्रबल धक्का लगा था। राष्ट्रकूटकालमें जैनधर्मका कोई सक्रिय विरोधी सम्प्रदाय नहीं था फलतः वह राज्यधर्म तथा बहुजन धर्मके पद पर प्रतिष्ठित था। इस युगमें जनाचार्योंने जैन साहित्यकी असाधारण रूपसे वृद्धि की थी। तथा ऐसा प्रतीत होता है कि वे जनसाधारणको शिक्षित करनेके सत्प्रयत्नमें भी संलग्न थे। वर्णमाला सीखनेके पहले बालकको श्री 'गणेशाय नमः' कण्ठस्थ करा देना वैदिक सम्प्रदायोंमें सुप्रचलित प्रथा है, किन्तु दक्षिण भारतमें अब भी जैन नमस्कार, वाक्य 'ओम् नमः सिद्धेभ्यः' (ओनामासीधं १) व्यापक रूपसे चलता। श्री० चि० वि० वैद्यने बताया है कि उक्त प्रचलनका यही तात्पर्य लगाया जा सकता है कि हमारे काल (राष्ट्रकूट) में जैन गुरुवोंने देशकी शिक्षामें पूर्ण रूपसे भाग लेकर इतनी अधिक अपनी छाप जमाई थी कि जैनधर्मका दक्षिणमें संकोच हो जानेके बाद भी वैदिक सम्प्रदायोंके लोग अपने बालकोंको उक्त जैन नमस्कार वाक्य सिखाते ही रहें। यद्यपि इस जैन नमस्कार वाक्यके अजैनमान्यता पर रख अर्थ भी किये जा सकते हैं तथापि यह सुनिश्चित है कि इसका मूलस्रोत जैन-संस्कृति ही थी।

भूमिका—

राष्ट्रकूट युगमें हुए जैनधर्मके प्रसारकी भूमिका पूर्ववर्ती राज्यकालोंमें भली भांति तैयार हो चुकी थी। कदम्बवंश (ल० ५ वी० ६ठी शती ई०) के कितने ही राजा २ जैनधर्मके अनुयायी तथा अभिवर्द्धक थे। लक्ष्मेश्वरमें कितने ही कल्पित अभिलेख (ताम्रपत्रादि) मिले३ हैं जो सम्भवतः ईसाकी १० वीं अथवा ११ वीं शतीमें दिये गये होंगे तथापि उनमें वे धार्मिक उल्लेख हैं जो प्रारम्भिक चालुक्य-राजा विनयादित्य, विजयादित्य तथा विक्रमादित्य द्वितीयने जैन धर्मायतनोंको दिये थे। फलतः इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उक्त चालुक्य नृपति यदा कदा जैनधर्मके पृष्ठपोषक अवश्य रहे होंगे अन्यथा जब ये पश्चात् लेख लिखे गये तब उक्त चालुक्य राजा ही क्यों दातार' रूपमें चुने गये तथा दूसरे अनेक प्रसिद्ध राजाओंके नाम क्यों न दिये गये इस समस्याको सुलझाना बहुत ही कठिन हो जाता है। बहुत संभव है कि ये अभिलेख पहिले प्रचारित हुए तथा छाल कर मिटा दिये गये मूल लेखोंकी उत्तरकालीन प्रतिलिपि मात्र थे। और भावी इतिहासकारोंके उपयोगके लिये पुनः उत्कीर्ण करा दिये गये थे, जोकि वर्तमानमें उन्हें मनगढ़ंत कह रहे हैं। तलवाड़के गंगराजवंशके अधिकांश राजा जैन धर्मानुयायी तथा अभिरक्षक थे। जैनधर्मायतनोंको गंगराज राचमल्ल द्वारा प्रदत्त दानपत्र कुर्गमें४ मिले हैं। जब इस राजाने वहुमलाई पर्वत पर अधिकार किया था तो उस पर एक जैनमन्दिरका निर्माण५ कराके विजयी स्मृतिको अमर किया था। प्रकृत राज्यकालमें लक्ष्मेश्वरमें 'राय-राचमल्ल बसदि, गंगापरमादि चैत्यालय, तथा गंग-कन्दर्प चैत्यमन्दिर नामोंसे विख्यात जैनमन्दिर६ वर्तमान थे। जिन राजाओंके नामानुसार उक्त मन्दिरोंका नामकरण हुआ था वे सब गंगवंशीय राजा लोग जैनधर्मके अधिष्ठाता थे; ऐसा निष्कर्ष उक्त लेख परसे निकालना समुचित है। महाराज मारसेन द्वितीय तो परम जैन थे। आचार्य अजितसेन उनके गुरु थे। जैनधर्ममें उनकी इतनी प्रगाढ़ श्रद्धा थी कि उसीके वश होकर उन्होंने ९७६ ई० में राज्य त्याग करके समाधि मरण

१ मध्यभारत तथा उत्तरभारतके दक्षिणी भागमें इस रूपमें अब भी चलता है।

२ इण्डियन एण्टीक्वायरी ६–पृष्ठ २२ तथा आगे— इण्डियन एण्टीक्वायरी ७–पृ० ३४—

३ इण्डियन एण्टीक्वायरी ७–पृ० १११ तथा आगे।

४ इ० एण्टी० ६ पृ० १०३

५ एपी ग्राफिका इण्डिका, ४ पृ० १४०

६ इ० एण्टी० ७ पृ० १०५–६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(सल्लेखना) पूर्वक प्राण विसर्जन किया था। मारसिंहके मन्त्री चामुण्डराय चामुण्डरायके रचयिता स्वामिभक्त प्रबल प्रतापी सेनापति थे। श्रवणबेलगोलामें गोम्मटेश्वर (प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवके द्वितीय पुत्र बाहुबली) की लोकोत्तर, विशाल तथा सर्वाङ्ग सुन्दर मूर्तिकी स्थापना इन्होंने करवाई थी। जैनधर्मकी आस्था तथा प्रसारकताके कारण ही चामुण्डरायकी गिनती उन तीन महापुरुषोंमें की जाती है जो जैनधर्मके महान प्रचारक थे। इन महापुरुषोंमें प्रथम दो तो श्रीगंगराज तथा हुल्ल थे जो कि होयसलवंशीय महाराज विष्णुवर्द्धन तथा मारसिंह प्रथमके मन्त्री थे। नोलम्बावाडीमें जैनधर्मकी खूब वृद्धि हो रही थी। एक ऐसा शिलालेख मिला है जिसमें लिखा है कि नोलम्बावाडी प्रान्तमें एक ग्रामको सठने राजासे खरीदा था। तथा उसे धर्मपुरी४ (वर्तमान सलेम जिलेमें पड़ती है) में स्थित जैन धर्मायतनको दान कर दिया था।

जैन-राष्ट्रकूट-राजा—

राष्ट्रकूट राजाओंमें अमोघवर्ष प्रथम वैदिक धर्मानुयायीकी अपेक्षा जैन ही अधिक था। आचार्य जिनसेनने अपने 'पार्श्वाभ्युदय' काव्यमें 'अपने आपको नृपतिका परमगुरु लिखा है, जो कि अपने गुरु पुण्यात्मा मुनिराजका नाम मात्र स्मरण करके अपने आपको पवित्र मानता था१' गणित शास्त्रके ग्रन्थ सारसंग्रह' में इस बातका उल्लेख है कि 'अमोघवर्ष' स्याद्वादधर्मका अनुयायी था२। अपने राज्यको किसी महामारीसे बचानेके लिए अमोघवर्षने अपनी एक अंगुलीकी बलि महालक्ष्मीको चढ़ाई थी३। यह बताता है कि भगवान महावीरके साथ साथ वह वैदिक देवताओंको भी पूजता था वह जैन धर्मका सक्रिय तथा जागरुक अनुयायी था। स्व० प्रा० राखालदास बनर्जीने मुझे बताया था कि बनवासीमें स्थित जैनधर्मायतनोंने अमोघवर्षका अपनी कितनी ही धार्मिक क्रियाओंके प्रवर्तकके रूपमें उल्लेख किया है। यह भी सुविदित है कि अमोघवर्ष प्रथमने अनेकबार राजसिंहासन त्यागकर दिया था। यह बताता है कि वह कितना सच्चा जैन था। क्योंकि सम्भवतः कुछ समय तक 'अकिञ्चिन' धर्मका पालन करने के लिये ही उसने यह राज्य त्याग किया होगा। यह अमोघवर्षकी जैन-धर्म-आस्था ही थी जिसने आदिपुराणके अन्तिम पांच अध्यायोंके रचयिता गुणभद्राचार्यको अपने पुत्र कृष्ण द्वितीयका शिक्षक नियुक्त करवाया था४। मूलगुण्डमें स्थित जैन मन्दिरको कृष्णराज द्वितीयने भी दान दिया था५। फलतः कहा जा सकता है कि यदि वह पूर्ण-रूपसे जैनी नहीं था तो कमसे कम जैन धर्मका प्रश्रयदाता तो था ही। इतना ही इसके उत्तराधिकारी इन्द्र तृतीयके विषयमें भी कहा जा सकता है। दानवुलपदु६ शिलालेखमें लिखा है कि महाराज श्रीमान् नित्यवर्ष (इन्द्र तृ० ने अपनी मनोकामनाओंकी पूर्तिकी भावनासे श्रीअर्हन्तदेवके अभिषेक मंगलके लिये पाषाणकी वेदी (सुमेरु पर्वतका उपस्थापन) बनवायी थी। अंतिम राष्ट्रकूट राजा इन्द्र-चतुर्थ भी सच्चा जैन था जब वह बारंबार प्रयत्न करके भी तैल द्वितीयसे अपने राज्यको वापस न कर पाया तब उसने अपनी धार्मिक आस्थाके अनुसार सल्लेखना व्रत धारण करके प्राण त्याग कर दिया था७।

जैन सामंतराजा—

राष्ट्रकूट नृपतियोंके अनेक सामंत राजा भी जैन धर्मावलम्बी थे। सौनदत्तिके रट्टशासकोंमें लगभग सब+ सबही जैन धर्मावलम्बी थे। जैसा कि राष्ट्रकूट इतिहासमें लिख चुका हूँ। अमोघ वर्ष प्रथमका प्रतिनिधि शासक बंकेय८ भी जैन था। यह वनवासीका शासक था। अपनी राजधानीके जैन धर्मायतनोंको एक ग्राम दान करनेके लिए इसे राज आज्ञा प्राप्त हुई थी९।

बङ्केयका पुत्र लोकादित्य जिनेन्द्रदेव द्वारा उपदिष्ट धर्मका प्रचारक था; ऐसा उसके धर्मगुरु श्रीगुणचन्द्रने भी लिखा है। इन्द्रतृतीयके सेनापति श्रीविजय१० भी जैन थे इनकी छत्रछायामें जैन साहित्यका पर्याप्त विकास हुआ था।

---

४ एपी० इ० भा० १० पृ० ५७

(१) इ० एण्टी० भा० ७ पृ० २१६-८,

(२) विण्टर नित्शका 'ग्रैशीचटी' भा० ३ पृ० ५७५,

(३) एपी० इ० भा० १८ पृ० २४८

(४) जर्नल ब० ब्रा० रो० ए० सो०, भा० २२ पृ० ८५,

(५) जर्नल ब० ब्रा० रो० ए० सो० भा० १० पृ० १८२,

(६) आर्के० सर्वे० रि० १९०५ ६ पृ० १२१-२,

(७) इ० एण्टी० भा० २३ पृ० १२४,

(८) हिष्ट्री ओ० राष्ट्रकूटस पृ० २७२ ३,

(९) एपी० इ० भा० ६ पृ० २९।

(१०) एपी. इ० भा. १० पृ. १४९,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युल्लिखित महाराज, सामंतराजा पदाधिकारी तो ऐसे हैं जो अपने दान पत्रादिकके कारण राष्ट्रकूट युगमें जैन धर्म प्रसारकके रूपसे ज्ञात है, किन्तु शीघ्र ही ज्ञात होगा कि इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक जैन राजा इस युग में हुए थे। इस युगने जैन ग्रंथकार तथा उसके उपदेशकोंकी एक अखण्ड सुन्दर मालाही उत्पन्न की थी। यतः इन सबको राज्याश्रय प्राप्त था फलतः इनकी साहित्यिक एवं धर्म प्रचारकी प्रवृत्तियोंसे समस्त जनपद पर गम्भीर प्रभाव पड़ा था। बहुत सम्भव है इस युगमें रट्ट जनपदकी समस्त जनसंख्याका एक तृतीयांश भगवान महावीरकी दिव्यध्वनि (सिद्धांतोंका अनुयायी रहा हो। १अलबरुनीके उद्धारणके आधारपर रसीद उद्-दीनने लिखा है कि कोंकण तथा थानाके निवासी ई० की ग्यारवीं शतीके प्रारम्भमें समनी (श्रमण अर्थात् बौद्ध) धर्मके अनुयायी थे।

अल-इदसीने नहरवाला (अनहिल पट्टन के राजाको बौद्ध धर्मावलम्बी लिखा है। इतिहासका प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि जिस राजाका उसने उल्लेख किया है वह जैन था, बौद्ध नहीं। अत एव स्पष्ट है कि मुसलमान बहुधा जैनोंको बौद्ध समझ लेते थे। फलतः उपर्युल्लिखित रशीद-उद-दीनका वक्तव्य दक्षिणके कोंकण तथा थाना भागोंमें दशमी तथा ग्यारहवीं शतीके जैन धर्म-प्रसारका सूचक है बौद्ध धर्मका नहीं। राष्ट्रकूट कालकी समाप्तिके उपरान्तही लिंगायत सम्प्रदायके उदयके कारण जैनधर्मको अपना बहुत कुछ प्रभाव खोना पड़ा था क्योंकि किसी हद तक यह सम्प्रदाय जैन धर्मको मिटाकर ही बढ़ाया।

जैन संघ जीवन

इस कालके अभिलेखोंसे प्राप्त सूचनाके आधार पर उस समयके जैन मठोंके भीतरी जीवनकी एक झांकी मिलती है। प्रारम्भिक कदम्ब२ वंशके अभिलेखोंसे पता लगता है कि वर्षा ऋतुमें चतुर्मास अनेक जैन साधु एक स्थान पर रहा करते थे। इसीके (वर्षाके३) अन्तमें वे सुप्रसिद्ध जैन पर्व पर्यूषण मनाते थे। जैन शास्त्रोंमें पर्यूषण बड़ा महत्व है। दूसरा धार्मिक फाल्गुन शुक्ला अष्टमीसे प्रारम्भ होता था और एक सप्ताह तक चलता था। श्वेताम्बरोंमें वह चैत्र शुक्ला पंचमी से प्रारम्भ होता है। शत्रुञ्जय४ पर्वत पर यह पर्व अब भी बड़े समारोहसे मनाया जाता है, क्योंकि उनकी मान्यतानुसार श्रीऋषभदेवके गणधर पुण्डरीकने पांच करोड़ अनुयायीयोंके साथ इह तिथिको ही मुक्ति पायी५ थी। यह दोनों पर्व षष्ठशतीसे दक्षिणमें सुप्रचलित थे। फलतः ये राष्ट्रकूट युगमें भी अवश्य बड़े उत्साहसे मनाये जाते होंगे। क्योंकि जैन शास्त्र इनकी विधि करता है और ये आज भी मनाये जाते हैं।

राष्ट्रकूट युगके मंदिर तो बहुत कुछ अंशोंमें वैदिक मंदिर कलाकी प्रतिलिपि थे। भगवान महावीरकी पूजा-विधि वैसी ही व्यय-साध्य तथा विलासमय हो गयी थी जैसी कि विष्णु तथा शिवकी थी।

शिलालेखोंमें भगवान महावीरके 'अंग भोग तथा रंग-भोग' के लिये दान देनेके उल्लेख मिलते हैं जैसा कि वैदिक देवताओंके लिये चलन था। यह सब भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट सर्वांग आकिंचन्य धर्मकी व्याख्या नहीं थी।

जैन मठोंमें भोजन तथा औषधियोंकी पूरी व्यवस्था रहती थी तथा धर्म शास्त्रके शिक्षणकी६ भी पर्याप्त व्यवस्था थी?

अमोघवर्ष प्रथमका कोन्नूर शिलालेख तथा कर्कके सूरत ताम्रपत्र जैन धर्मायतनोंके लिये ही दिये गये थे। किन्तु दोनों लेखोंमें दानका उद्देश्य बलिचरुदान, वैश्वदेव तथा अग्निहोत्र दिये हैं। ये सबके सब प्रधान वैदिक संस्कार हैं। आपाततः इनको करनेके लिए जैन मंदिरोंको दिये गये दान को देखकर कोई भी व्यक्ति आश्चर्यमें पड़ जाता है। सम्भव है कि राष्ट्रकूट युगमें जैन धर्म तथा वैदिकधर्मके बीच आजकी अपेक्षा अधिकतर समता रही हो। अथवा राज्यके कार्यालयकी असावधानीके कारण दानके उक्त हेतु शिलालेखोंमें जोड़ दिये गये हैं। कोन्नूर शिलालेखमें ये हेतु इतने अयुक्त स्थान पर हैं कि मुझे दूसरी व्याख्या ही अधिक उपयुक्त जंचती है।

(१) इलियट, १. पृ. ६८.

(२) इ. एण्टी. भा. ७. पृ ३४,

(३) एन. एपी टोम ओफ जैनिज्म पृ. ६७६-७।

(४) भादोंके अंत में पर्यूषण होता है। तथा चतुर्मासके अन्तमें कार्तिककी अष्टान्हिका पड़ती है।

(५) इनसाइकलोपीडिया ओफ रिलीजन तथा इथिक्स भाग ५ पृ. ८७८।

(६) जर्नल बो. ब्रा. रो. ए. सो;-भा. १० पृ. २३७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राष्ट्र-कूट युगका जैन साहित्य—

जैसा कि पहले आ चुका है अमोघवर्ष प्रथम कृष्ण द्वितीय तथा इन्द्र तृतीय या तो जैन धर्मानुयायी थे अथवा जैनधर्मके प्रश्रय दाता थे। यही अवस्था उनके अधिकतर सामन्तोंकी भी थी। अतएव यदि इस युगमें जैन साहित्यका पर्याप्त विकास हुआ तो यह विशेष आश्चर्यकी बात नहीं है। ८वीं शतीके मध्यमें हरिभद्रसूरि हुए हैं तथापि इनका प्रांत अज्ञात होनेसे इनकी कृतियोंका यहां विचार नहीं करेंगे। स्वामी समन्तभद्र यद्यपि राष्ट्र कूट कालके बहुत पहले हुए हैं तथापि स्याद्वादकी सर्वोत्तम व्याख्या तथा तत्कालीन समस्त दर्शनोंकी स्पष्ट तथा सयुक्तिक समीक्षा करनेके कारण उनकी आप्त मीमांसा इतनी लोकप्रिय हो चुकी थी कि इस राज्यकालमें ८वीं शती के आरम्भसे लेकर आगे इस पर अनेक टीकायें दक्षिणमें लिखीं गयी थी।

राष्ट्रकूट युगके प्रारम्भमें अकलंक भट्टने इस पर अपनी अष्टशती टीका लिखी थी। श्रवणबेलगोलाके ६७वें शिलालेखमें अकलंकदेव राजा साहसतुङ्गसे अपनी महत्ता कहते हुए चित्रित किये गये हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये साहसतुङ्ग दन्तिदुर्ग द्वितीय थे। इस शिलालेखमें बौद्धोंके विजेता रूपमें अकलङ्कभट्टका वर्णन है। ऐसी भी दन्तोक्ति है कि अकलङ्क भट्ट राष्ट्रकूप सम्राट कृष्ण प्रथमके पुत्र थे१। किन्तु इसे ऐतिहासिक सत्य बनानेके लिये अधिक प्रमाणोंकी आवश्यकता है। आप्त-मीमांसाकी सर्वांगसुन्दरटीकाके रचयिता श्रीविद्यानन्द-इसके थोड़े समय बाद हुए थे। इनके उल्लेख श्रवणबेलगोलाके शिलालेखोंमें२ है।

न्याय-शास्त्र—

इस युगमें जैन तर्क शास्त्रका जो विकास हुआ है वह भी साधारण न था? ८वीं शतीके उत्तरार्धमें हुए आमाणिक्यनंदिने 'परीक्षामुखसूत्र'३ की रचना की थी। नौवीं शतीके पूर्वार्द्धमें इस पर आचार्य प्रभाचन्द्रने अपनी विख्यात 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' टीका लिखी थी। इन्होंने मार्तण्डके अतिरिक्त 'न्यायकुमुदचन्द्रभी लिखा था। जैन तर्कशास्त्रके दूसरे आचार्य जो कि इसी युगमें हुए थे वे मल्लवादी थे, जिन्होंने नवसारीमें दिगम्बर जैन मठकी स्थापना की थी जिसका अब कोई पता नहीं है? कर्क स्वर्णवर्षके४ सूरत पत्रमें इनके शिष्यके शिष्यको ८२१ ई० में दत्तदानका उल्लेख है इन्होंने धर्मोत्तराचार्यकी५ न्याय-बिन्दुटीकापर टिप्पण लिखे थे जो कि धर्मोत्तर टिप्पण नामसे ख्यात है। बौद्धग्रन्थके ऊपर जैनाचार्य द्वारा टीका लिखा जाना राष्ट्रकूटकालके धार्मिक समन्वय तथा सहिष्णुताकी भावनाका सर्वथा उचित फल था।

अमोघवर्षकी राजसभातो अनेक विद्वानरूपी मालासे सुशोभित थी यही कारण है कि आगामी अनेक शतियोंमें वह महान-साहित्यिक प्रश्रयदाताके रूपमें ख्यात था६। उसके धर्मगुरु जिनसेनाचार्य हरिवंशपुराणके रचयिता थे, वह ग्रन्थ ७८३ ई० में समाप्त हुआ था। अपनी कृतिकी प्रशस्तिमें उस वर्षमें विद्यमान राजाओंके नामोंका उल्लेख करके उनके प्राचीन भारतीय इतिहासके शोधक विद्वानों पर बड़ा उपकार किया है वह अपनी कृति आदि पुराणको समाप्त करने तक जीवित नहीं रह सके थे। जिसे उनके शिष्य गुणचन्द्रने ८९७ ई० में समाप्त किया था; जो बनवासी७ १२००० के शासक लोकादित्यके धर्मगुरु थे। आदि पुराण जैनग्रन्थ हैं जिसमें जैनतीर्थंकर आदि शलाका पुरुषोंके जीवन चरित्र है। आचार्य जिनसेनने अपने पार्श्वाभ्युदय काव्यमें शृङ्गारिक खण्डकाव्य मेघदूतकी प्रत्येक श्लोककी अंतिम पंक्ति (चतुर्थ भरण) को तपस्वी तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवन वर्णनमें समाविष्ट करनेकी अद्भुत बौद्धिक कुशलताका परिचय दिया है। पार्श्वाभ्युदयके प्रत्येक पद्यकी अन्तिम पंक्ति मेघदूत८ के उसी संख्याके श्लोकसे ली गई है। व्याकरण ग्रंथ शाकटायनकी अमोघवृत्ति९ तथा वीराचार्यका गणित ग्रन्थ 'गणितसार संग्रह' भी अमोघवर्ष प्रथमके राज्यकालमें समाप्त हुए थे।

(१) पिटरसनकी रिपोर्ट सं २,७९। ज० ब० ब्रा. रो. ए. सो० भा० १८ पृ० २१३

(२) एपी० कर्ना० भा० २ सं. २५४

(३) भारतीय न्यायका इतिहास पृ० १७९,

(४) एपी० इ० भाग २१, (४भा० न्या० पृ० १९४–५१

(५) इ० एण्टी० १९०४ पृ० ९७,

(६) इ० एण्टी० भा० १२ पृ० २१६

(७) इसमें अपनेको लेखक 'अमोघवर्षका परमगुरु' कहता है

(८) इ० एण्टी० १९१४ पृ० २०५

(९) बिण्टर नित्श गर्जटी. भा० ३ पृ० ५७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तद्देशीय साहित्य

कनारी भाषामें प्रथम लक्षणशास्त्र 'कविराजमार्ग' लिखे जानेका श्रेय भी सम्राट् अमोघवर्षके राज्यकालको है। किन्तु वह स्वयं रचयिता थे या केवल प्रेरक थे यह अब भी विवादग्रस्त१ है। प्रश्नोत्तरमालाका रचयिता भी विवादका विषय है क्योंकि इसके लिये श्री शंकराचार्य, विमल तथा अमोघवर्ष प्रथमके नाम लिये जाते हैं। डा० एफ० डबल्यू० थोमसने तिब्बती भाषाके इसके अनुवादकी प्रशस्तिके आधार पर लिखा है कि इस पुस्तिकाके तिब्बती२ भाषाके अनुवादके समय अमोघवर्ष प्रथम इसका कर्त्ता माना जाता था। अतः बहुत सम्भव है कि वही इसका कर्त्ता रहा हो।

दशवीं शतीके मध्य तक दक्षिण कर्नाटकके चालुक्य-वंशीय सामन्तोंकी राजधानी गंगधारा भी साहित्यिक प्रवृत्तियोंका बड़ा केन्द्र हो गई थी। यहीं पर सोमदेवसूरि३ ने अपने 'यशस्तिलकचम्पू' तथा 'नीतिवाक्यामृत' का निर्माण किया था। यशस्तिलक यद्यपि धार्मिक पुस्तक है तथापि लेखकने इसको सरस चम्पू बनानेमें अद्भुत साहित्यिक सामर्थ्यका परिचय दिया है। द्वितीय पुस्तक राजनीतिकी है। कौटिल्यके अर्थशास्त्रकी अनुगामिनी होनेके कारण इसका स्वतन्त्र महत्त्व नहीं आंका जा सकता है तथापि यह साम्प्रदायिकतासे सर्वथा शून्य है तथा कौटिल्यके अर्थशास्त्रसे भी ऊँची नैतिक दृष्टिसे लिखा गया है।

महाकवि पम्प

इस राज्यकालमें कर्नाटक जैनधर्मका सुदृढ़ गढ़ था। तथा जैनाचार्योंको यह भली भांति स्मरण था कि उनके परमगुरु तीर्थंकरने जनपदकी भाषाओंमें धर्मोपदेश दिया था। परिणामस्वरूप १० वीं शतीमें हम कनारी लेखकों-की भरमार पाते हैं। जिनमें जैनी ही अधिक थे। इनमें प्राचीनतम तथा प्रधानतम महाकवि पम्प थे इनका जन्म ९०२ ई० में हुआ था। आन्ध्रदेशके निवासी होकर भी कनारी भाषाके आदि कवि हुए थे। इन्होंने अपनी कृति आदि पुराणको ९४१ ई० में समाप्त किया था, यह जैन ग्रन्थ है। अपने मूल ग्रन्थ 'विक्रमार्जुन विजय' में इन्होंने अपने आश्रयदाता 'अरिकेशरी'४ द्वितीयको अर्जुन रूपसे उपस्थित किया है। अतः यह ग्रन्थ ऐतिहासिक रचना है। इसी ग्रन्थसे हमें इन्द्र तृतीयके उत्तर भारत पर किये गये उन आक्रमणोंकी सूचना मिलती है जिनमें उसका सामन्त अरिकेशरी द्वितीय भी जाता था। इस कालके दूसरे ग्रन्थकार 'असंग' तथा 'जिनभद्र' थे जिनका उल्लेख पूनने किया है यद्यपि इनकी एक भी कृति उपलब्ध नहीं है। पून कवि १० वीं शतीके तृतीय चरणमें हुए हैं। यह संस्कृत तथा कनारी भाषामें कविता करनेमें इतने अधिक दक्ष थे कि इन्हें कृष्ण तृतीयने उभयकुल चक्रवर्तीकी उपाधि दी थी। इनकी प्रधान कृति 'शांतिपुराण'५ है। महाराज मारसिंह द्वितीयके सेनापति चामुण्डरायने 'चामु-ण्डराय पुराण' को दसवीं शतीके तीसरे६ चरणमें लिखा था६ रन्न भी प्रसिद्ध कनारी कवि थे। इनका जन्म ९४९ ई० में हुआ था। इनका अजितनाथ पुराण ७, ९९३ में समाप्त हुआ था जैनधर्म ग्रन्थोंका पुराण रूपमें रचा जाना बताता है कि राष्ट्रकूट युगमें जैनधर्मका प्रभाव तथा मान्यता दक्षिणमें असीम थी।

—(वर्णी अभिनन्दन ग्रंथसे)

(१) इ० एण्टी १९०४ पृ० १९९
(२) ज० ब० ब्रा० रो० ए० सो० १२ पृ० ९८०
(३) यशस्तिलकचम्पू पृ० ४१९
(४) कर्नाटक भाषाभूषण, भूमिका० पृ० १३-४
(५) कर्नाटक भाषाभूषण भूमिका० पृ० १५
(६) एपी० इ० भा० ५ पृ० १७५
(७) एपी० इ० भाग ६ पृ० ७२।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मथुराके जैनस्तूपादिकी यात्राके महत्वपूर्ण उल्लेख

(श्री अगरचन्द नाहटा)

मथुराकी खुदाईसे जो प्राचीन सामग्री प्राप्त हुई है वह जैन इतिहास और मूर्तिपूजा आदिकी प्राचीनताकी दृष्टिसे बहुत ही महत्वपूर्ण है, मथुराका देवनिर्मित स्तूप तो जैन साहित्यमें बहुत ही प्रसिद्ध रहा है, प्रस्तुत लेखमें हम प्राचीन जैन साहित्यसे ई० १७वीं शताब्दी तकके ऐसे उल्लेखोंको संगृहीतकर प्रकाशित कर रहे हैं, जो मथुरासे जैनोंके दीर्घ कालीन संबंध पर नया प्रकाश डालेंगे, उनसे पता चलेगा कि कब-कब किस प्रकार इन स्तूपादि-की यात्राके लिये जैन यात्री मथुरा पहुँचे। इन उल्लेखोंसे मथुराके जैन स्तूपों व तीर्थके रूपमें कब तक प्रसिद्धि रही, इसका हम भली-भांति परिचय पा जाते हैं सर्व-प्रथम जैन साहित्यमें मथुरा सम्बन्धी उल्लेखोंकी चर्चा की जाती है।

जैन-साहित्यमें मथुरा

श्वे० जैनागमोंमें एकादश अंग सूत्र सबसे प्राचीन ग्रन्थ माने जाते हैं। भगवान महावीरकी वाणीका प्रामाणिक संग्रह इन ग्रंथोंमें मिलता* है जहां तक मेरे अध्ययन, मथुराका सबसे प्राचीन उल्लेख इन ११ अंग सूत्रोंमेंसे छट्ठे ज्ञाता सूत्रमें आता है, प्रसंग है द्रौपदीके स्वयंवर मंडपका स्वयंवर मंडपमें आनेके लिये अनेक देशके राजाओंको द्रौपदीके पिता अपने दूतोंके द्वारा आमंत्रण पत्र भेजता है, इनमें एक दूत मथुराके 'धर' नामक राजाके पास भी जाता है, इससे उस समय मथुराका शासक 'धर' नामक कोई राजा रहा था, ऐसा ज्ञात होता है। इसी द्रौपदी अध्ययनके आगे चलकर दक्षिणमें पांडवोंने मथुरा नगरी बसाई, इनका भी उल्लेख मिलता है, इसलिये बृहद्कल्पसूत्रमें उत्तर मथुरा और दक्षिण मथुरा, इन दो मथुराओंका नाम मिलता है, वहांके उल्लेखानुसार शालिवाहनका दंडनायक दोनों मथुरा पर अधिकार करता है, परवर्ती प्रबंधकोषमें भी यह अनुश्रुति सी मिलती है।

अंगसूत्रोंके बाद उपांगसूत्रोंका स्थान है। इनकी संख्या १२ मानी गई है, जिनमेंसे पन्नवणा (प्रज्ञापनासूत्र) में साढ़े पच्चीस आर्य देशोंकी सूची दी गई है। इन सूचीमें शौरसेन देशकी राजधानीके रूपमें मथुराका उल्लेख पाया जाता है तत्परवर्ती साहित्य 'वसुदेवहिण्डी' ५वीं × शताब्दीका प्राचीनतम प्राकृत कथा ग्रन्थ है, इसके श्यामा-विजय लंभकमें कंस अपने श्वसुरसे मथुराका राज्य मांगता है, और अपने पिता उग्रसेनको कैद कर स्वयं मथुराका शासक बन जाता है। उद्धरण है—इस ग्रंथके प्रारंभमें जंबू स्वामीका चरित्र दिया गया है। उसमें मथुराकी कुबेरदत्ता वेश्याका १८ नातों वाला विचित्र कथानक है फिर आगमोंकी चूर्णियां और भाष्योंमें भी मथुराके सम्बन्धमें महत्वपूर्ण उल्लेख मिलते है। डा० जगदीशचन्द्र जैनने इन उल्लेखोंका संक्षिप्त अपने 'जैन ग्रन्थोंमें भौगोलिक सामग्री और भारतवर्षमें जैनधर्मका प्रचार' नामक लेखमें दिया गया है, जिसे यहां उद्धृत कर देना आवश्यक समझता हूँ

'मथुराके आस-पासका प्रदेश शूरसेन' कहा जाता है, मथुरा अत्यन्त प्राचीन नगरी मानी जाती है, जहां जैन-श्रमणोंका बहुत प्रचार था। (उत्तराध्ययन चूर्णी)।

उत्तरापथमें मथुरा एक महत्व पूर्ण नगर था। जिसके अन्तर्गत ९६ ग्रामोंमें लोग अपने घरोंमें और चौराहों पर जिन मूर्तिकी स्थापना करते थे। अन्यथा घर गिर पड़ते थे। (बृहद् कल्पभाष्य)।

मथुरामें एक देवनिर्मित स्तूप था। जिसके लिये जैनों और बौद्धोंमें झगड़ा हुआ था। कहा जाता था कि इसमें जैनोंकी जीत हुई और स्तूप पर उनका अधिकार हो गया[1] (व्यवहार भाष्य)

मथुरा आर्यमंगू व आर्यरक्षित आदि जैन श्रमणोंका विहार स्थल था। यहां अनेक पाखंडी साधु रहते थे, अत-एव मथुराको 'पाखंडी गर्भ' कहा गया है। (आवश्यक चूर्णी, आचारांग-चूर्णी श्रावकचरित्र)

---

* लेखकका यह कथन अभी बहुत ही विवादापन्न है। —प्रकाशक

× यह ग्रन्थ ७वीं शताब्दीका है, विना किसी प्रामाणिक अनुसंधानके अनुमानसे ५वीं शती लिख दिया गया है। उसकी रचना ७वीं शताब्दीसे पूर्वकी नहीं है।

—प्रकाशक

१. इसके कारणके लिये देखिये विविध तीर्थकल्प।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन सूत्रोंका संस्कार करनेके लिये मथुरामें अनेक जैन श्रमणोंका संघ उपस्थित हुआ था। वह सम्मेलन 'माथुरी वाचना' के नामसे प्रसिद्ध है। (नन्दीचूर्णी)

मथुरा भंडीरयज्ञकी यात्राके लिये प्रसिद्ध था। (आवश्यक चूर्णी , ।

यह नगर व्यापारका बड़ा केन्द्र था, और विशेष कर वस्त्रके लिए प्रसिद्ध था। (आवश्यक टीका)।

यहांके लोग व्यापार पर ही जीवित रहते थे, खेती-वाड़ी पर नहीं' (बृहद्कल्प भाष्य १) यहां स्थल मार्गसे माल आता जाता था। आचारांग चूर्णी)।

मथुराके दक्षिण पश्चिमकी ओर महोली नामक ग्रामको प्राचीन ग्रन्थोंमें मथुरा बतलाया जाता है। (मुनि कल्याणविजयजीका श्रमण भगवान महावीर, पृ० ३७६)।

इसमें आधारित मथुराके देवनिर्मित जैन स्तूपकी अनुश्रुति व्यवहारभाष्यमें सर्वप्रथम पाई जाती है। डा० 'मोतिचन्द्र'के 'कुछ जैन अनुश्रुतियाँ और पुरातत्त्व' शीर्षक लेखमें उस अनुश्रुतिका सारांश इस प्रकार है—

एक समय एक जैनमुनिने मथुरामें तपस्या की। तपस्यासे प्रसन्न होकर एक जैनदेवीने मुनिको वरदान देना चाहा, जिसे मुनिने स्वीकार नहीं किया। रुष्ट होकर देवीने रत्नमय देवनिर्मितस्तूपकी रचना की। स्तूपको देखकर बौद्ध भिक्षु वहां उपस्थित हो गये और स्तूपको अपना कहने लगे। बौद्ध और जैनोंकी स्तूप सम्बन्धि लड़ाई ६ महीने तक चलता रही। जैन साधुओंने ऐसी गड़बड़ी देखकर उस देवीकी आराधना की। जिसका वरदान लेना पहले अस्वीकार कर चुके थे। देवीने उन्हें राजाके पास जाकर यह अनुरोध करनेकी सलाह दी कि राजा इस शर्त पर फैसला करे कि अगर स्तूप बौद्धोंका है तो उस पर गैरिक झंडा फहराना चाहिये, अगर वह जैनका है तो सफेद झंडा। रातों रात देवीने बौद्धोंका केशरिया झंडा बदलकर जैनोंका सफेद झण्डा स्तूप पर लगा दिया और सवेरे जब राजा स्तूप देखने आया तो उस पर सफेद झंडा फहराते देखकर उसने उसे जैन स्तूप मान लिया।

इसके पश्चात् दिगम्बर हरिषेणाचार्य रचित 'बृहत् कथा कोश' के अन्तरगत वैरकुमारकी कथामें मथुराके पंच स्तूपोंका वर्णन आया है। इस ग्रन्थका रचनाकाल ई० सं० ९३२ है। तदनंतर ई० सं० ९५९ में रचित सोमदेवसूरिके यशस्तिलकचंपूमें कुछ हेर फेरके साथ देवनिर्मित स्तूपकी अनुश्रुति दी है। सोमदेवने जब एक स्तूप होना बतलाया है तो हरिषेणने स्तूपोंकी संख्या ५ बतलाई है। इन अनुश्रुतियोंके सम्बन्धमें विशेष विचार डा० मोतीचंद्रजीने अपने उक्त लेखमें भली प्रकार किया है। उन्होंने जिनप्रभुसूरिके 'विविधतीर्थकल्प' की अनुश्रुतिका सारांश भी दिया है।

अभी तक विद्वानोंके सन्मुख उपर्युक्त उल्लेख ही आये हैं। अब मैं अपनी खोजके द्वारा मथुराके जैन स्तूपादिके बारेमें जो महत्वपूर्ण उल्लेख प्राप्त हुये हैं उन्हें क्रमशः दे रहा हूँ—

आचार्य भद्रबाहुकी ओघनियुक्तिमें मुनि कहां कहां बिहार करें। इनका निर्देश करते हुए 'चक्के थुमे' पाठ आता है। टीकाकारने इसका 'स्तूपमथुरायां' इन शब्दों द्वारा स्पष्टीकरण किया है।

सं० १३३४में प्रभावक चरित्रके अनुसार आर्यरक्षितसूरि मथुरामें पधारे थे तब इन्द्रने आकर निगोद सम्बन्धी पृच्छा की थी, जिसका सही उत्तर पाकर उसने सन्तोष पाया। इसी ग्रन्थके पादलिप्तसूरि प्रबंधानुसार वे भी यहां पधारे थे व 'सुपार्श्वजिनस्तूपकी' यात्रा की थी। यथा—

'अथवा मथुरायां स सूरिर्गत्वा महायशः;
श्रीसुपार्श्वजिन-स्तुपेऽनमत् श्रीपार्श्वमज्जुसु···

'प्रभावकचरित्र' एवं 'प्रबन्धकोश' दोनों ग्रन्थोंके बप्पभट्टसूरि प्रबन्धके अनुसार यहां आम राजाने पार्श्वनाथ मंदिर बनवाया था जिसकी प्रतिष्ठा बप्पभट्टिसूरिजीने की थी। आम राजाके कहनेसे वाक्पतिराजको प्रबोध देनेको वे मथुरा आये तब वाक्पति राजा 'वराह-मंदिर' में ध्यानस्थ था। सूरिजीने इसे प्रबोध देकर जैन बनाया, उसका स्वर्गवास भी यहीं हुआ। बप्पभट्टसूरिसे लेपमय ४ बिंम्ब कलाकारसे बनवाये थे। उनमेंसे एक मथुरामें स्थापित किया गया। विविध तीर्थ कल्पानुसार बप्पभट्टिसूरिजीने जीर्णोद्धार करवाया एवं महावीर बिम्बकी स्थापना की।

इनमें आर्यरक्षित प्रथम शती, पादलिप्त पांचवीं,

१. बृहद्कल्पभाष्यगत उल्लेखोंके लिये मुनि पुण्यविजयजी सम्पादित संस्करणके छठे भागका परिशिष्ट देखिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व बप्पभट्टि ६ वीं शताब्दी में हुये हैं। प्रभावक चरित्रमें वीरसूरिके भी यहाँ पधारनेका उल्लेख है।

युगप्रधानाचार्य गुर्वावलीके अनुसार सं० १२१४ से १७ के बीच मणिधारी जिनचन्द्र सूरिने मथुराकी यात्रा की थी।

सं० १३७५ में हस्तिनापुर और मथुरा महातीर्थकी यात्राका संघ खरतरगच्छाचार्य जिनचन्द्रसूरिके नेतृत्वमें ठाकुर अचलने निकाला। इस बड़े संघने मथुराके पार्श्व, सुपार्श्व व महावीरकी यात्रा की। इस संघका विस्तृत वर्णन उपर्युक्त युगप्रधानाचार्य गुर्वावलीमें मिलता है।

'मत्यपूज्यैः ? सुश्रावकसंघमहामेलापकेन श्रीमथुरायां श्रीपार्श्व, श्रीमहावीरतीर्थंकराणां व राज्ञां च महता विस्तरेण यात्रा कृता।'

पाटण भंडारके ताडपत्रीय ग्रंथोंकी सूचिके पृष्ठ १५५में सिद्धसेनसूरि रचित सकलतीर्थस्तोत्रमें ऐतिहासिक जैन तीर्थों सम्बन्धि गाथायें प्रकाशित हैं। उनमें मथुरा सम्बंधी गाथा इस प्रकार है—

सिरि पासनाह सहियं रम्मं सिरिनिम्मियं महाथूमं।
कलिकालवि सुतित्थं महुरानयरीउ (ए) वंदामि ॥२०॥

यद्यपि इस स्तोत्रके रचनाकालका ठीक समय ज्ञात नहीं, पर ताडपत्रीय प्रतिको देखते हुए यह १२वीं १३वीं शताब्दीकी रचना अवश्य होगी।

संस्कृतमें संगमसूरि रचित 'तीर्थमाला' की एक प्रति हमारे संग्रहमें है। इसमें मथुराके स्तूपादिका उल्लेख इस प्रकार है—

मथुरापुरि प्रतिष्ठितः सुपार्श्वजिनकाल संभवो जयति।
अद्यापि सुराऽभ्यर्च्य श्रीदेवी विनिर्मित स्तूप :···

इस तीर्थ मालामें भी रचनाकाल दिया हुआ नहीं है पर इसमें आबूके जैन मन्दिरका उल्लेख करते हुये केवल विमलवाहके रचित युगादिमन्दिरका ही उल्लेख है, वस्तुपाल तेजपाल कारित नेमिजिनालयका नहीं है। इसलिये इसकी रचना संवत् १०८६ से १२८६ के बीचकी निश्चित है।

इसके पश्चात् अंचलगच्छके महेन्द्रसूरि रचित 'अष्टोतरी तीर्थमाला' में मथुराके सुपार्श्वस्तूप सम्बन्धी गाथा इस प्रकार मिलती है।

तच्चं नियाणवाये, सेय पडागा निसाइ जहिं जाया···
खवग पभावा तं थुणि, महुराई सुपासजिण थूमं···

इस गाथामें व्यवहारभाष्यकी पूर्व दी गई अनुश्रुति का उल्लेख दिया गया है। अञ्चलगच्छ पट्टावलीमें इस तीर्थमालाके रचयिता महेन्द्रसिंहसूरिका गच्छनायक काल सं० १२६६ से १३०६ तकका बतलाया है। इस तीर्थमालामें आबूके वस्तुपालका रचित मन्दिरका भी उल्लेख होनेसे इसकी रचना सं० १३०० से १३०६ के बीचमें हुई प्रतीत होती है।

१४ वीं शतीकी अंचलगच्छके संघ यात्राका उल्लेख पूर्व किया जा चुका है।

१५ वीं शताब्दीके खरतर गच्छाचार्य जिनवर्धनसूरिजीने पूर्वदेशके जैनतीर्थोंकी यात्रा करके 'पूर्वदेशचैत्य परिपाटी' की रचना की। इसकी ८ वीं गाथामें लिखा है—

त पासु सुपासह थूम नमउं, सिरिमथुरा नयरंमि।
त सौरीपूर सिरिनेमिजिण, समुदविजय वंसंमि ॥ ८ ॥

इसी शतीके मुनि प्रभसूरिके अट्ठोतरी तीर्थमालाके २० वें पद्यमें 'महुरानयरी थूमु सुपासह' इन शब्दोंमें उल्लेख मिलता है।

१७ वीं शताब्दीके भयरव रचित 'पूर्व देश चैत्य-परिपाटी' की ११ वीं गाथामें मथुरा यात्राका उल्लेख इस प्रकार है—

तिह तीरथ यात्रा करि, पहुता मथुरा ठाम।
दुई जिण हर थी रिषभना, थूम सिरि प्रभवा स्वामी ॥११॥

मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्र वंशोत्कीर्तन काव्यके अनुसार बीकानेरके महाराजा रायसिंहके मन्त्री कर्मचन्द्रने मथुराके चैत्योंका जीर्णोद्धार करवाया था। यथा—

शत्रुञ्जये मधुपद्ये जीर्णोद्धार चकार यः
येनैतत्सदृशं पुण्यं कारणं नास्ति किंचन ॥ ३१४ ।

व्याख्या—यो मंत्री शत्रुञ्जये पुण्डरीकाद्रे तथा मधुपद्ये मथुरानां जीर्णोद्धार-जीर्णपतितं चैत्य समारचनं चकार।

इसी शताब्दीके कवि व्याकुशलने सं० १६४६ में अनेक जनतीर्थोंकी यात्रा करके 'तीर्थमाला' बनाई। इसकी प्रारम्भिक २८ गाथायें प्राप्त नहीं है पर प्राप्त पद्योंमें से ४० वें में मथुराके ५०० स्तूपों और स्थान-स्थान पर जिन प्रतिमाओंके होनेका उल्लेख इस प्रकार है :—

मथुरा देखिउ मन उल्लसइ, मनोहर थुम्भ जिहां पांचसइं।
गौतम जंबू प्रभवो साम, जिणवर प्रतिमा ठामोठाम ॥४०॥

इस शताब्दीके सुप्रसिद्ध आचार्य हीरविजय सूरिजीने मथुराके ५२७ स्तूपोंकी यात्रा की, जिसका उल्लेख उनके भ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कवि ऋषभदासने 'हीरविजयसूरिरास' में इस प्रकार किया है :—

हीरै कर्‌यौ जै विहारवाला, हीरै कर्‌यौ जै विहार।
मथुरापुर नगरीमें आवे, जुहार्‌या ज पास कुँवार वाला।१।
यात्रा करि सुपासनी रे, पूठे बहु परिवार।
संघ चतुर्विध तिहां मिल्यौ, पूरसे तीरथ सुसार वाल ॥२॥
जम्बू परमुख ना वलीरे, थूम ते अतिहि उदार।
पांचसे सताविस सूं तो, जुहारतां हर्ष अपार वाला ॥३॥

इस यात्राका विस्तृत वर्णन हीरसौभाग्यकाव्यके १४ वें सर्गमें मिलता है। पार्श्वनाथ सुपार्श्व एवं ५२७ स्तूपोंकी यात्राका ही उसमें उल्लेख है।

उपर्युक्त सभी उल्लेख श्वेताम्बर जैन साहित्यके हैं दिगम्बर साहित्यमें भी कुछ उल्लेख खोजने पर अवश्य मिलना चाहिए। १७ वीं शतीके दि० कवि राजमल्लके जंबूस्वामी चरित्रके प्रारम्भमें यह ग्रन्थ, जिस साहू-टोडरके अनुरोधसे रचा गया उसका ऐतिहासिक परिचय देते हुए सं० १६३० में उसके द्वारा मथुराके स्तूपोंके जीर्णोद्धारका महत्वपूर्ण विवरण दिया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ जगदीशचन्द्र शास्त्री द्वारा संपादित, मानिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमालासे प्रकाशित है। जगदीशचन्द्रजीने उपर्युक्त प्रसंगका सार इस प्रकार दिया है—

'अगरवाल जातिके गर्गगोत्री साधु टोडरके लिये राजमल्लने संवत् १६३२ के चैत वदि को यहाँ जंबू-स्वामि चरित्र बनाया। टोडर भाटनियाके निवासी थे।

एक बारकी बात है कि साधु टोडर सिद्धक्षेत्रकी यात्रा करने मथुरामें आये। वहाँ पर बीचमें जंबू स्वामिका स्तूप (निःसही स्थान) बना हुआ था और उसके चरणोंमें विद्युच्चर मुनिका स्तूप था। आस पास अन्य मोक्ष जाने वाले अनेक मुनियोंके स्तूप भी मौजूद थे। इन मुनियोंके स्तूप कहीं पांच कहीं आठ, कहीं दस और कहीं बीस, इस तरह बने हुये थे। साहु टोडरको इन स्तूपोंके जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें देख कर इनका जीर्णोद्धार करनेकी प्रबल भावना जागृत हुई। फलतः टोडरने शुभ दिन और शुभ लग्न देखकर अत्यन्त उत्साहपूर्वक इस पवित्र कार्यका प्रारम्भ किया। साहू टोडरको इस पुनीत कार्यमें बहुत सा धन व्यय करके ५०१ स्तूपोंका एक समूह और १३ स्तूपोंका दूसरा समूह इस तरह कुल ५१४ स्तूपोंका निर्माण कराया। तथा इन स्तूपोंके पास ही १२ द्वारपाल आदि की भी स्थापना की। प्रतिष्ठा कार्य विक्रम सं० १६३० के ज्येष्ठ शुक्ला १२ बुधवारके दिन नौ घड़ी व्यतीत होने पर सूरिमन्त्र पूर्वक निर्विघ्न सानन्द समाप्त हुआ। साहु टोडरने चतुर्विध संघको आमन्त्रित किया। सबने परम आनन्दित होकर टोडरको आशीर्वाद दिया। और गुरुने उसके मस्तक पर पुष्प वृष्टि की। तत्पश्चात् साहु-टोडरने सभामें खड़े होकर शास्त्रज्ञ कवि राजमल्लसे प्रार्थना की, कि मुझे जंबुस्वामिपुराण सुननेकी बड़ी उत्कण्ठा है। इस प्रार्थनासे प्रेरित हो कवि राजमल्लने यह रचना की।

विशाल जैन साहित्यके सम्यक् अनुशीलनसे और भी बहुत सामग्री मिलनेकी सम्भावना है पर अभी तो जो उल्लेख ध्यानमें थे, उन्हें ही संग्रहित कर प्रकाशित कर रहा हूँ। इनसे भी निम्नोक्त हुई नये ज्ञातव्य प्रकाशमें आते हैं -

१. मथुरा सम्बन्धी उल्लेखोंकी प्रचुरता श्वेताम्बर साहित्यमें ही अधिक है। अतः उनका संबंध यहाँसे अधिक रहा है। जैन तीर्थके रूपमें मथुराकी यात्रा १७ वीं शती तक श्वे० मुनि एवं श्रावकगण निरन्तर करते रहे।

२. देव निर्मित स्तूप सम्बन्धी अनुश्रुतियाँ दोनों सम्प्रदायके साहित्यमें मिलती हैं, अतः वह स्तूप दोनोंके लिए समान रूपसे मान्य-पूज्य रहा होगा। यह स्तूप पार्श्वनाथका था।

३. कुछ शताब्दियों तक तो जैनोंके लिये मथुरा एक विशिष्ट प्रचार केन्द्र रहा है। जैनोंका प्रभाव यहाँ बहुत अधिक रहा। जिसके फलस्वरूप मथुरा व उसके ९६ गांवों में भी प्रत्येक घरमें मंगलचैत्य स्थापित किये जाने लगे, जिसमें जैन मूर्तियाँ होती थी। विविधतीर्थकल्पके अनुसार यहाँके राजा भी जैन रहे हैं।

४. जैनागमोंकी 'माथुरी वाचना' यहाँकी एक चिर-स्मरणीय घटना है।

५. ९ वीं शतीके आचार्य बप्पभट्टसूरिने यहाँ पार्श्व जिनालयको प्रतिष्ठित किया व महावीर बिम्ब भी भेजा।

६. पहले यहाँ एक देवनिर्मित स्तूप ही था फिर पाँच स्तूप हुये, क्रमशः स्तूपोंकी संख्या ५२७ तक पहुँच गई, जो १७ वीं शती तक पूज्य रहे हैं। २२७ स्तूपोंका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्ध जंबूस्वामी, प्रभवस्वामी आदि ५२७ व्यक्तियोंसे जो साथ ही दीक्षित हुए थे जोड़ा गया प्रतीत होता है।

७. भयरवकी चैत्य परिपाटीके अनुसार १७ वीं शती से पहले यहाँ ऋषभदेवके भी दो मन्दिर स्थापित हो चुके थे।

८. सं० १६३० में यहाँ दि० साहु टोडर द्वारा ५१४ स्तूपोंकी प्रतिष्ठा उल्लेखनीय है।

प्राप्त सभी उल्लेख अकबरके राज्यकाल तकके हैं। यहाँ तक तो स्तूपादि सुरक्षित और पूज्य थे। इसके बाद इनका उल्लेख नहीं मिलता। अतः औरंगजेबके समय यहाँ अन्य हिंदू प्राचीन मन्दिरोंके साथ जैन स्मारक भी विनाशके शिकार बन गये होंगे।

मथुरासे प्राप्त जैन पुरातत्व और इन साहित्यगत उल्लेखोंके प्रकाशमें मथुराके जैन इतिहास पर पुनः विचार करना आवश्यक है। यहांके जैन प्रतिमालेखोंका संग्रह स्व० पूर्णचन्द्रजी नाहटा, हिंदी अंग्रेजी अनुवाद व टिप्पणियों सहित छपाना चाहते थे। पर उनके स्वर्गवास हो जानेसे वह संग्रहग्रन्थ यों ही पड़ा रह गया। इसे किसी योग्य व्यक्तिसे संपादित कराके शीघ्र ही प्रकाशित करना आवश्यक है।

जैन मूर्तिकला पर श्री उमाकान्त शाहने हालहीमें 'डाक्टरेट' पद प्राप्त किया है उन्होंने मथुराकी जैनकला पर भी अच्छा अध्ययन किया होगा। उसका भी शीघ्र प्रकाशित होना आवश्यक है।

जैन साहित्यकी विशद जानकारी वाले विद्वानोंसे मथुरा सम्बन्धी और भी जहाँ कहीं उल्लेख मिलता है उसका संग्रह करवाया जाना चाहिए। आशा है जैन समाज इस ओर शीघ्र ध्यान देगी दि० विद्वानोंसे विशेष रूपसे अनुरोध है कि उनकी निर्वाणकांड–भक्ति आदिमें जो जो उल्लेख हों शीघ्र प्रकाशित कर हमारी जानकारी बढ़ावें।

नोट : श्री अगरचन्दजी नाहटाने अपने इस लेखमें मथुराके सम्बन्धमें जो अपनी धारणानुसार निष्कर्ष निकाला है वह ठीक मालूम नहीं होता। क्या दिगम्बर साहित्यके मथुरा सम्बन्धी सभी उल्लेख प्रकाशित हो चुके हैं? यदि नहीं तो फिर जो कुछ थोड़े से समुल्लेख प्रकाशित हुए हैं उन परसे क्या निम्न निष्कर्ष निकालना उचित कहा जा सकता है कि–'मथुरा सम्बन्धी उल्लेखोंकी प्रचुरता श्वेताम्बर साहित्यमें ही है। अतः उनका सम्बन्ध यहाँ से अधिक रहा है।' दिगम्बर ग्रन्थोंमें मथुरा सम्बन्धी अनेक उल्लेख निहित हैं। इतना ही नहीं किन्तु मथुरा और उसके आस-पासके नगरोंमें दिगम्बर जैनोंका प्राचीन समयसे निवास है। अनेक मंदिर और शास्त्र भण्डार हैं, बादशाही समयमें जो नष्टभ्रष्ट किये गये हैं और अनेक शास्त्र भण्डार जला दिये गये। थोड़ी देरके लिये यदि यह भी मान लिया जाय कि उल्लेख कम है और यह भी हो सकता है कि दिगम्बर विद्वान् इस विषयमें आजकी तरह उपेक्षित भी रहे हों तो इससे क्या उनकी मान्यताकी कमीका अंदाज लगाया जा सकता है।

मथुरामें राजा उदितोदयके राज्यकालमें अर्हद्दास सेठके कथानकमें कार्तिकमासकी शुक्लपक्षकी ८मीसे पूर्णिमा तक कौमुदी महोत्सव मनानेका उल्लेख हरिषेण कथाकोषमें विद्यमान है जिनमें उक्त सेठकी आठ स्त्रियोंके सम्यक्त्व प्राप्त करनेके उल्लेखके साथ उस समय मथुरामें आचार्यों और साधुसंघका भी उल्लेख किया गया है। इसके सिवाय तीर्थस्थानरूपसे निर्वाणकाण्डकी 'महुराए अहिछित्ते' नामक गाथामें मथुराका स्पष्ट उल्लेख है। इस कारण तीर्थक्षेत्रकी यात्राके लिये भी वे आते जाते रहे और वर्तमानमें तीर्थ यात्राके लिये भी आते रहते हैं।

इनके सिवाय मथुराके देवनिर्मित स्तूपका उल्लेख आचार्य सोमदेवने अपने यशस्तिलकचम्पूमें किया है और आचार्य हरिषेणने अपने कथाकोषमें वैरमुनिकी कथाके निम्नपद्यमें मथुरामें पंचस्तूपोंके बनाये जानेका उल्लेख किया है।

'महारजतनिर्मणान् खचितान् मणिनायकैः।
पञ्चस्तूपान् विधायाग्रे समुच्चजिनवेश्मनाम् ॥१३२॥

पंचस्तूपान्वयकी यह दिगम्बर परम्परा बहुत पुरानी है। आचार्य वीरसेनने धवलामें और उनके शिष्य जिनसेनने जयधवलटीका प्रशस्तिमें पंचस्तूपान्वयके चन्द्रसेन आर्यनन्दि नामके दो आचार्योंका नामोल्लेख किया है जो वीरसेनके गुरु व प्रगुरु थे। इससे स्पष्ट है कि आचार्य चन्द्रसेनसे पूर्व उक्त परंपरा प्रचलित थी इसके सिवाय पंचस्तूप निकायके आचार्य गुहनन्दीका उल्लेख पहाड़पुरके ताम्रपत्रमें पाया जाता है, जिसमें गुप्त संवत् १५६ सन् ४७८ में नाथशर्मा ब्राह्मणके द्वारा गुहनन्दीके विहारमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्हन्तोंकी पूजाके लिये तीन ग्रामों और अशर्फियोंके देने का उल्लेख* है। इससे भी स्पष्ट है कि उक्त संवत्से पूर्व पंयस्तूपान्वय विद्यमान था।

पांडे रायमल्लने अपने जम्बू स्वामीचरितमें ५१४ स्तूपोंका जीर्णोद्धार साहू टोडर द्वारा करानेका उल्लेख किया है। इससे १७वीं शताब्दी तक तो मथुराके स्तूपोंका समुद्धार दिगम्बर परम्पराकी ओरसे किया गया है। यात्रादिके साधारण उल्लेखोंको छोड़ दिया गया है। इस सब विवेचनसे स्पष्ट है कि मथुरा दि० जैन समाजका पुरातन समयसे ही मान्य तीर्थस्थान था और वर्तमानमें भी है। मुनि उदयकीर्तिने अपनी निर्वाण पूजामें मथुरामें ५१५ स्तूपोंका उल्लेख किया है—

'महुराउरि वंदउं पासनाह, थुम पंचसयइं ठिइ पंदराइं।'

संवत् १६४० में ब्रह्मचारी भगवतीदासके शिष्य पांडे जिनदासने अपने जंबूस्वामिचरित्रमें साहु पारसके पुत्र टोडर द्वारा मथुराके पास निसही बनानेका भी उल्लेख किया है। और भी अनेक उल्लेख यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं जिन्हें फिर किसी समय संकलित किया जायगा। अतः नाहटाजीने आधुनिक तीर्थयात्रादिके सामान्य उल्लेखों परसे जो निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न किया, वह समुचित प्रतीत नहीं होता। दिगम्बर जैन परम्पराका मथुरासे बहुत पुराना सम्बन्ध है।

लेखकने श्वेताम्बरीय ग्रन्थोंमें मथुराके दक्षिण उत्तर मथुराका उल्लेख किया है। दिगम्बर साहित्यमें भी उत्तर दक्षिण मथुराके उल्लेख निहित हैं। इतना ही नहीं उत्तर मथुरा तो दिगम्बर जैनोंका केन्द्रस्थल है ही किन्तु दक्षिण मथुरा भी दिगंबर जैन संस्कृतिका केंद्र रहा है। मद्रासका वर्तमान मदुरा जिला ही दक्षिण मथुरा कहलाती है। उस जिलेमें दि० जैन गुफाएं और प्राचीन मूर्तियोंका अस्तित्व आज भी उनकी विशालताका द्योतक है। मदुराका पाण्ड्य राज्यवंशभी जैनधर्मका पालक रहा है।

हरिषेणकथाकोशके अनुसार पांड्यदेशमें दक्षिण मथुरा नामका नगर था। जो धन धान्य और जिनायतनोंसे मंडित था, वहां पाण्डु नामका राजा था और सुमति नामकी उसकी पत्नी। वहाँ समस्त शास्त्रज्ञ महातपस्वी आचार्य मुनिगुप्त थे। एक दिन मनोवेग नामके विद्याधर कुमारने जैनमंदिर और उक्त आचार्यकी भक्तिभावसहित वन्दना की। एक मुहूर्तके बाद कुमारने श्रावस्ति नगरके जिनकी वन्दनाको जानेका उल्लेख किया। तब गुप्ताचार्यने कुमारसे कहा कि तुम रेवती रानीसे मेरा आशीर्वाद कह देना। बस विद्याधर कुमारने रेवती रानीकी अनेक तरहसे परीक्षा की और बादमें आचार्य गुप्तका आशीर्वाद कहा। इस सब कथनसे दोनों मथुराओंसे निर्ग्रन्थ दिगम्बर सम्प्रदायका सम्बन्ध ही पुरातन रहा जान पड़ता है।

* देखो, एपि ग्राफिका इंडिका भाग २० पे० ५६।

अपभ्रंश भाषाके अप्रकाशित कुछ ग्रन्थ

(परमानन्द जैन शास्त्री)

[कुछ वर्ष हुए जब मुझे जैनशास्त्रभण्डारोंका अन्वेषण कार्य करते हुए अपभ्रंश भाषाके कुछ ग्रन्थ मिले थे जिनका सामान्य परिचय पाठकोंको करानेके लिये मैंने दो वर्ष पूर्व एक लेख लिखा था, परन्तु वह लेख किसी अन्य कागजके साथ अन्यत्र रक्खा गया, जिससे वह अभी तक भी प्रकाशित नहीं हो सका। उसे तलाश भी किया गया परन्तु वह उस समय नहीं मिला किन्तु वह मुझे कुछ नोट्सके कागजोंको देखते हुए अब मिल गया। अतः उसे इस किरणमें दिया जा रहा है।]

भारतीय भाषाओंमें अपभ्रंश भी एक साहित्यिक भाषा रही है। लोकमें उसकी प्रसिद्धिका कारण भाषा सौष्ठव और मधुरता है। उसमें प्राकृत और देशीय भाषाके शब्दोंका सम्मिश्रण होनेसे प्रान्तीय भाषाओंके विकासमें उससे बहुत सहायता मिली है। पर अपभ्रंशभाषाका पद्य साहित्य ही देखनेमें मिलता है गद्य-साहित्य नहीं। जैनकवियोंने प्रायः पद्य साहित्यकी सृष्टि की है। यद्यपि दूसरे कवियोंने भी ग्रन्थ लिखे हैं परन्तु उनकी संख्या अत्यन्त विरल है। अपभ्रंश भाषाका कितना ही प्राचीन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य नष्ट हो गया है और कितना ही साहित्य जैन-शास्त्रभण्डारोंमें अभी दबा पड़ा है जिसके प्रकाशमें लाने-की खास आवश्यकता है। यही कारण है कि अपभ्रंश भाषाका अभी तक कोई प्रामाणिक इतिहास तय्यार नहीं किया जा सका। अस्तु, इस लेखमें निम्न ग्रन्थोंका परिचय दिया जाता है जो विद्वानोंकी दृष्टिसे अभी तक ओझल थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—णेमिणाहचरिउ लक्ष्मण-देव सम्भवणाहचरिउ और वरांगचरिउ कवि तेजपाल. सुकमालचरिउके कर्ता मुनि पूर्णभद्र, सिरिपालचरिउ और जिनरत्तिकथाके कर्त्ता कवि नरसेन, णेमिणाहचरिउ और चन्दप्पहचरिउके कर्त्ता कवि दामोदर, आराहणासारके कर्ता कवि वीर।

१. णेमिणाहचरिउ—इस ग्रन्थके कर्ता कवि लक्ष्मणदेव हैं। इनका वंश पुरवाड था और पिताका नाम रयण या रत्नदेव था। इनकी जन्मभूमि मालवदेशके अन्तर्गत गोनन्द नामके नगरमें थी, जहाँ पर अनेक उत्तुंग जिन-मन्दिर और मेरु जिनालय भी था। वहीं पर कविने पहले किसी व्याकरण ग्रन्थका निर्माण किया था जो बुध-जनोंके कण्ठका आभरण रूप था, परन्तु वह कौनसा व्याकरण ग्रन्थ है, उसका कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आया और न अभी तक उसके अस्तित्वका पता ही चला है। गोनन्द नगर कहाँ बसा था. इसके अस्तित्वका ठीक पता नहीं चलता; परन्तु इतना जरूर मालूम होता है कि यह नगरी उज्जैन और भेलसाके मध्यवर्ती किसी स्थान पर रही होगी। कवि लक्ष्मण उसी गोनन्द नगरमें रहते थे, वे विषयोंसे विरक्त और पुरवाड वंशके तिलक थे, तथा रात दिन जिनवाणीके रसका पान किया करते थे। कविके भाई अम्बदेव भी कवि थे, उन्होंने भी किसी ग्रन्थकी रचना की थी, उस ग्रन्थका नाम, परिमाण और रचना-काल आदि क्या था यह सब अन्वेषणीय है।

कविवर लक्ष्मणकी एक मात्र कृति 'णेमिणाहचरिउ' ही इस समय उपलब्ध है जिसमें जैनियोंके बाईसवें तीर्थंकर श्रीकृष्णके चचेरे भाई भगवान नेमिनाथका जीवन-परिचय दिया हुआ है। इस ग्रन्थमें ७ परिच्छेद या संधियाँ हैं, जिसके श्लोकोंकी आनुमानिक संख्या १३०५ है। ग्रन्थकी अन्तिम प्रशस्तिमें रचनाकाल दिया हुआ नहीं है। सम्भव है ग्रन्थकी किसी अन्य प्राचीन प्रतिमें वह उपलब्ध हो जाय। कविने इस ग्रन्थको आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशीको प्रारम्भ करके चैत्र कृष्णा त्रयोदशीको १० महीनेमें समाप्त किया है। इस ग्रन्थकी एक प्रति जयपुर में मैंने सं० १५३६ की लिखी हुई सन् ४४ के मई महीने-में देखी थी, और डाक्टर हीरालालजी एम० ए० डी० लिट्को इस ग्रन्थकी एक प्रति सं० १५१० में प्राप्त हुई थी। सम्भव है अन्य ग्रंथभण्डारोंमें इससे भी प्राचीन प्रतियाँ उपलब्ध हो जायं।

२. सम्भवणाहचरिउ—इस ग्रंथके कर्ता कवि तेजपाल हैं, जो काष्ठासंघान्तर्गत माथुरान्वयके भट्टारक सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति. यशःकीर्ति मलयकीर्ति और गुण-भद्रकी परम्पराके विद्वान थे। यह भट्टारक देहली, ग्वालि-यर, सोनीपत और हिसार आदि स्थानोंमें रहे हैं। पर यह यह पट्ट कहाँ था इस विषयमें अभी निश्चयतः कुछ नहीं कहा जा सकता है, पर उक्त पट्टके स्थान वही हैं जिनका नामोल्लेख ऊपर किया गया हैं। कवि तेजपालने अपने जीवन और माता-पितादिक तथा वंश एवं जाति आदिका कोई समुल्लेख नहीं किया। प्रस्तुत ग्रन्थमें १० सन्धियाँ हैं जिनमें जैनियोंके तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथजीका जीवन परिचय दिया हुआ है। इस ग्रन्थकी रचना भादानक देशके श्रीनगरमें दाऊदशाहके राज्यकालमें की गई है। श्रीप्रभनगरके अग्रवाल वंशीय मित्तलगोत्रीय साहू लखमदेवके चतुर्थ पुत्र थील्हा, जिनकी माताका नाम महादेवी और प्रथम धर्मपत्नीका नाम 'कोल्हाही; और दूसरी पत्नीका नाम आसारही था, जिससे त्रिभुवनपाल और रणमल नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। थील्हाके पाँच भाई और भी थे, जिनके नाम खिडसी, होलू, दिवसी, मल्लिदास और कुन्थदास थे। ये सभी भाई और उनकी संतान जैनधर्मके उपासक थे।

लखमदेवके पितामह साहु हलुने जिन विम्ब प्रतिष्ठा भी कराई थी, उन्हींके वंशज थील्हाके अनुरोधसे कवि तेजपालने उक्त सम्भवनाथ चरितकी रचना की है। ग्रन्थमें रचनाकालका कोई समुल्लेख नहीं है, भट्टारकोंकी नामावली जो ऊपर दी गई है उनमें सबसे अन्तिम नाम भट्टारक गुणभद्रका है, जो भट्टारक मलयकीर्तिके शिष्य थे, और सं० १५०० के बाद किसी समय पट्ट पर प्रतिष्ठित हुए थे, उनका समय विक्रमकी १५ वीं शताब्दीका अन्तिम चरण और सोलहवीं शताब्दीका प्रारम्भिक काल जान पड़ता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस ग्रन्थकी एक प्रति सं० १५८३ की लिखी हुई ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन ब्यावरमें मौजूद है, जिससे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थका रचनाकाल उक्त सं० १५८३ से बादका नहीं है यह सुनिश्चित है, किन्तु वह उससे कितने पूर्वका है यह ऊपरके कथनसे स्पष्ट ही है, अर्थात् यह ग्रन्थ संभवतः १५०० के आस पासकी रचना है।

इनकी दूसरी कृति 'वरांगचरिउ' है। यह ग्रन्थ नागौरके भट्टारकीय शास्त्र भण्डारमें सुरक्षित है। उसमें चार संधियाँ हैं। यह ग्रंथ इस समय सामने नहीं है, इस कारण उसके सम्बन्धमें अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

३ सुकमालचरिउ—इस ग्रंथके कर्ता मुनि पूर्णभद्र हैं जो मुनि गुणभद्रके प्रशिष्य और कुसुमभद्रके शिष्य थे। यह गुजरात देशके नागर मंडल' नामक नगरके निवासी थे। ग्रन्थकी अन्तिम प्रशस्तिमें मुनि पूर्णभद्रने अपनी गुरु परम्पराका उल्लेख करते हुए निम्न मुनियोंके नाम दिये हैं। वीरसूरि, मुनिभद्र, कुसुमभद्र, गुणभद्र, और पूर्णभद्र। ग्रन्थकर्ताने अपनेको शीलादिगुणोंसे अलंकृत और 'गुणसमुद्र' बतलाया है।

इनकी एकमात्र कृति 'सुकमालचरिउ' है, जिसमें अवन्तीके राजा सुकमालका जीवन परिचय छह सधियों अथवा परिच्छेदोंमें दिया हुआ है जिससे मालूम होता है कि वे जितने सुकोमल थे, परीषहों तथा उपसर्गोंके जीतनेमें उतने ही कठोर एवं गम्भीर थे और उपसर्गादिक कष्टोंके सहन करनेमें दक्ष थे। ग्रन्थमें उसका रचनाकाल दिया हुआ नहीं है जिससे निश्चयतः यह कहना कठिन है कि यह ग्रंथ कब बना? आमेर भण्डारकी इस प्रतिमें लेखक पुष्पिका वाक्य नहीं है। किन्तु देहली पंचायती मन्दिरकी प्रति सं० १६३२ की लिखी हुई है और इसकी पत्र संख्या ४३ है। जिससे स्पष्ट है कि यह ग्रंथ सं० १६३२ से पूर्व की रचना है कितने पूर्वकी यह अभी अन्वेषणीय है।

४ सिरिपाल चरिउ—इस ग्रन्थके कर्ता कवि नरसेन हैं कविने इस ग्रन्थमें अपना कोई परिचय नहीं दिया और न ग्रन्थका रचनाकाल ही दिया है, जिससे उस पर विचार किया जा सकता। इस ग्रन्थकी एक प्रति संवत् १५१२ चैत्रवदि ११ मंगलवारका रावर पत्तनके राजाधिराज डूंगरसिंहके राज्यकालमें बलात्कारगण सरस्वति गच्छके भट्टारक शुभचन्द्रके शिष्य एवं पट्टधर भट्टारक जिनचन्द्रके समयमें लिखी गई है। भ० जिनचन्द्रका पट्टसमय सं० १५०७ पट्टावलियोंमें पाया जाता है। इससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि इस ग्रन्थका निर्माण सं० १५१२ से पूर्व हुआ है, परन्तु पूर्व सीमा अभी अनिश्चित है। ग्रन्थमें दो सन्धियाँ हैं जिनमें श्रीपाल नामक राजाका चरित्र और सिद्धचक्रव्रतके महत्वका दिग्दर्शन कराया गया है।

इनकी दूसरी कृति 'जिनरात्तिविहाणकहा' नामकी है, जिसमें शिवरात्रिके ढंग पर 'वीरजिननिवाणरात्रिकथा' को जन्म दिया गया है और उसकी महत्ता घोषित की गई है। यह एक छोटा सा खण्ड ग्रन्थ है जो भट्टारक महेन्द्रकीर्तिके आमेर के भण्डारमें सुरक्षित है।

५-६ णेमिणाहचरिउ, चंदप्पहचरिउ—इन दोनों ग्रन्थोंके कर्ता जिनदेवके सुत कवि दामोदर हैं। ये दोनोंही ग्रन्थ नागौर भण्डारमें सुरक्षित हैं, ग्रन्थ सामने न होने से इस समय इनका विशेष परिचय देना सम्भव नहीं है।

७ मल्लिनाथकाव्य—इस ग्रन्थके कर्ता मूलसंघके भट्टारक प्रभाचन्द्रके प्रशिष्य और भट्टारक पद्मनन्दिके शिष्य कवि जयमित्रहल या कवि हरिचन्द्र हैं जो सहदेवके पुत्र थे यह ग्रन्थ अभीतक अपूर्ण है। आमेर भंडारमें इसकी एक खण्डित प्रति प्राप्त हुई है। इस ग्रन्थ प्रतिमें शुरुके चार पत्र नहीं हैं और अन्तिम १२२ वां पत्र भी नहीं है। ग्रन्थकी उपलब्ध प्रशस्तिमें उसका रचना काल भी दिया हुआ नहीं है जिससे कवि हरिचन्द्रका समय निश्चित किया जा सके। यह ग्रंथ पुहवि (पृथ्वी) देशके राजाके राज्यमें आल्हासाहुके अनुरोधसे बनाया गया था। आल्हासाहुके ४ पुत्र थे जिन्होंने इस ग्रंथको लिखाकर प्रसिद्ध किया है।

इनकी दूसरी कृति 'वड्ढमाणकव्व अथवा श्रेणिक चरित है। यह ग्रन्थ ११ सन्धियोंमें पूर्ण हुआ है जिसमें जैनियोंके चौवीसवें तीर्थंकर महावीर और तत्कालीन मगध-देशके सम्राट् बिम्बसार या श्रेणिकका चरित वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थको देवरायके पुत्र संघाधिप होलिवम्मु' के अनुरोधसे बनाया गया है और उन्हींके कर्णाभरण किया गया है। इस ग्रन्थकी कई प्रतियाँ कई शास्त्र भंडारोंमें पाई जाती हैं। इस ग्रंथमें भी रचनाकाल दिया हुआ नहीं है। यह प्रति जैन सिद्धान्त भवन आराकी है संवत् १६०० की लिखी हुई है जिससे इस ग्रन्थकी उत्तरावधि तो निश्चित है कि वह १६०० से पूर्व रचा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चूंकि ग्रन्थ कर्ताके गुरु भट्टारक पद्मनन्दि हैं जो भट्टारक प्रभाचन्द्रके पट्टधर × थे जैसा कि 'मल्लिनाथचरिउ' की अन्तिम प्रशस्तिके निम्न वाक्यसे प्रकट है जिसमें पद्मनन्दिको प्रभाचन्दके पट्टधर होनेका स्पष्ट उल्लेख है:—

'मुणि पहचंद पट्ट सु पहावण, पउमणंदि गुरु विरिय उपावण।'

जिनका समय विक्रमकी १४ वीं शताब्दीका अन्तिम चरण और १५ वीं शताब्दीका प्रारम्भिक समय है; क्योंकि पट्टावलियोंमें पद्मनन्दीके गुरु प्रभाचन्दके पट्ट पर प्रतिष्ठित होनेका समय संवत् १३७५ बतलाया गया है।

पद्मनन्दी मूलसंघ, नन्दिसंघ, बलात्कारगण और सरस्वती गच्छके विद्वान थे। यह उस समयके अत्यन्त प्रभावशाली विद्वान भट्टारक थे। इनकी कई कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं। जिनमें पद्मनन्दिश्रावकाचार प्रमुख है, दूसरी कृति 'भावन पद्धति' जिसका दूसरा नाम 'भावनाचतुस्त्रिंशतिका', तीसरी कृति वर्धमान चरित' है जो संवत् १५२२ फाल्गुण सुदि सप्तमीका लिखा हुआ है और गोपीपुरा सूरतके शास्त्रभंडारमें सुरक्षित है। इनके सिवाय 'जीरापल्ली' 'पार्श्वनाथ स्तवन' और अनेक स्तवन, पद्मनन्दि मुनिके द्वारा बनाए हुए उपलब्ध हुए हैं। इनके अनेक शिष्य थे, जिनमें अनेक शिष्य तो बड़े कवि और ग्रन्थ कर्ता हुये हैं। जिनमें भ० सकलकीर्ति और भ० शुभचन्द्रके नाम उल्लेखनीय हैं। इनके एक शिष्य विशालकीर्ति भी थे जिनके द्वारा सं० १४७० में प्रतिष्ठित २६ मूर्तियाँ टोंक राजस्थानमें प्राप्त हुई हैं*। इस सब विवेचनसे स्पष्ट है कि उक्त दोनोंके कर्ता कवि हरिचन्द या जयमित्रहल विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके प्रारम्भिक विद्वान हैं।

८ आराधनासार—इस ग्रन्थके कर्ता कवि वीर हैं वे कब हुए हैं और उनकी गुरु परम्परा क्या है? यह ग्रन्थ परसे कुछ भी ज्ञात नहीं होता। यह वीर कवि 'जम्बूस्वामी चरित' के कर्तासे संभवतः भिन्न जान पड़ते हैं जिसका रचनाकाल विक्रम संवत् १०७६ है प्रस्तुत ग्रन्थमें दर्शन ज्ञान, चारित्र, और तप रूप चार आराधनाओंका स्वरूप २० कडवकोंमें बतलाया गया है। जो आमेर भंडारके एक बड़े गुटकेमें पत्र ३३३ से ३३८ तक दिया हुआ है।

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रन्थ अपभ्रंश-भाषाके रासा अथवा 'रास' नामसे सूचियोंमें दर्ज मिलते हैं, परन्तु उनके अवलोकनका अवसर न मिलनेसे यहाँ परिचय नहीं दिया जा सका।

९ दोहानुप्रेक्षा—इस अनुप्रेक्षा ग्रन्थके कर्ता ग्रन्थ प्रतिमें लक्ष्मीचन्द्र बतलाए गये हैं, परन्तु उनकी गुरु परम्पराका कोई परिज्ञान नहीं हो सका। ग्रन्थमें ४७ दोहे हैं जिनमें १२ भावनाओंके अतिरिक्त अध्यात्मका संक्षिप्त वर्णन दिया हुआ है। यह ग्रंथ अनेकान्तकी इसी किरणमें अन्यत्र दिया जा रहा है।

दिगम्बर शास्त्रभण्डारोंमें अभी सहस्त्रों ग्रन्थ पड़े हुए हैं जिनके देखने या नोट करनेका कोई अवसर ही नहीं आया है। जैन समाजका इस ओर कोई लक्ष्य भी नहीं है। खेद है कि इस उपेक्षा भावसे अनेक बहुमूल्य कृतियाँ नष्ट हो गई हैं और हो रही हैं। क्या समाजके साधर्मी भाई अब भी अपनी उस गाढ़ निद्राको दूर करनेका यत्न करेंगे।

—सरसावा (सहारनपुर), ता० १२-११-४१

× श्रीमत्प्रभाचन्द्रमुनीन्द्रपट्टे शश्वत्प्रतिष्ठा प्रतिभा गरिष्टः।
विशुद्धसिद्धान्तरहस्यरत्नरत्नाकरो नन्दतु पद्मनन्दी
—विजोलिया शिलालेख

हँसो ज्ञानमरालिका समसमाश्लेषप्रभूताद्भुता—
नन्दं क्रीडति मानसेति विशदे यस्यानिशं सर्वतः।
स्याद्वादामृतसिन्धुवर्धनविधौश्रीमत्प्रभेन्दुप्रभाः,
पट्टे सूरिमतल्लिका स जयतात् श्रीपद्मनन्दी मुनिः ॥१॥
महाव्रतपुरन्दरः प्रशमदग्ध रागाङ्कुरः।
स्फुरत्परमपौरुषः स्थितिरशेषशास्त्रार्थवित्।
यशोभरमनोहरी कृतसमस्तविश्वम्भरः,
परोपकृतितत्परो जयति पद्मनन्दीश्वरः॥
—शुभचन्द्र गुर्वावली

* संवत् १५७० ज्येष्ट सुदि ११ गुरौ श्रीमूलसंघे गुणे (गच्छे) लोकगण उद्धारक श्री प्रभाचन्द्रदेवः (तत्) पट्टे पद्मनन्दि देवाः शिष्यः वशालकीर्तिदेवः तयोरुपदेशेन महासंघ खंडेलवाल गंगवाल गोत्रस्य खेता भार्या खिवासिरी तयो पुत्र धर्मा भार्या लल्लू तयो पुत्रत्रयः सा० भोजा, राजा, देलू प्रणमंति [नित्यम्]।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत साहित्यके विकासमें जैन विद्वानोंका सहयोग

(डा० मंगलदेव शास्त्री, एम. ए., पी. एच. डी.)

भारतीय विचारधाराकी समुन्नति और विकासमें अन्य आचार्योंके समान जैन आचार्यों तथा ग्रन्थकारोंका जो बड़ा हाथ रहा है उससे आजकलकी विद्वानमंडली साधारणतया परिचित नहीं है। इस लेखका उद्देश्य यही है कि उक्त विचार-धाराकी समृद्धिमें जो जैन विद्वानोंने सहयोग दिया है उसका कुछ दिग्दर्शन कराया जाय जैन विद्वानोंने प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती, हिन्दी, राजस्थानी, तेलुगु, तामिल आदि भाषाओंके साहित्यकी तरह संस्कृत भाषाके साहित्यकी समृद्धिमें बड़ा भाग लिया है। सिद्धान्त, आगम, न्याय, व्याकरण, काव्य, नाटक, चम्पू, ज्योतिष आयुर्वेद, कोष, अलंकार, छन्द, गणित, राजनीति, सुभाषित आदिके क्षेत्रमें जैन लेखकोंकी मूल्यवान संस्कृत रचनाएँ उपलब्ध हैं। इस प्रकार खोज करने पर जैन संस्कृत साहित्य विशालरूपमें हमारे सामने उपस्थित होता है। उस विशाल साहित्यका पूर्ण परिचय कराना इस अल्पकाय लेखमें संभव नहीं है। यहाँ हम केवल उन जैन रचनाओंकी सूचना देना चाहते हैं जो महत्वपूर्ण हैं। जैन सैद्धान्तिक तथा आरंभिक ग्रन्थोंकी चर्चा हम जानबूझकर छोड़ रहे हैं।

जैन न्याय—

जैनन्यायके मौलिक तत्त्वोंको सरल और सुबोधरीतिसे प्रतिपादन करने वाले मुख्यतया दो ग्रन्थ हैं। प्रथम अभिनव धर्मभूषणयति-विरचित न्यायदीपिका दूसरा माणिक्यनन्दिका परीक्षामुख, न्यायदीपिकामें प्रमाण और नयका बहुत ही स्पष्ट और व्यवस्थित विवेचन किया गया है। यह एक प्रकरणात्मक संक्षिप्त रचना है जो तीन प्रकाशोंमें समाप्त हुई है।

गौतमके न्यायसूत्र' और दिग्नागके 'न्यायप्रवेश' की तरह माणिक्यनन्दिका 'परीक्षामुख' जैन न्यायका सर्व प्रथम सूत्र ग्रंथ है। यह छः परिच्छेदोंमें विभक्त है और समस्तसूत्र संख्या २०७ है। यह नवमी शतीकी रचना है और इतनी महत्वपूर्ण है कि उत्तरवर्ती ग्रन्थकारोंने इसपर अनेक विशालटीकाएँ लिखी हैं आचार्य प्रभाचन्द्र [७८०-१०६५ ई०] ने इस पर बारह हजार श्लोक परिमाण 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' नामक विस्तृत टीका लिखी है। १२वीं शतीके लघुअनन्तवीर्यने इसी ग्रन्थ पर एक 'प्रमेयरत्नमाला' नामक विस्तृत टीका लिखी है। इसकी रचनाशैली इतनी विशद और प्राञ्जल है और इसमें चर्चित किया गया प्रमेय इतने महत्वका है कि आचार्य हेमचन्द्रने अनेक स्थलोंपर अपनी 'प्रमाणमीमांसा' में इसका शब्दशः और अर्थशः अनुकरण किया है। लघु अनन्तवीर्यने तो माणिक्यनन्दीके परीक्षामुखको अकलङ्कके वचनरूपी समुद्रके मन्थनसे उद्भूत न्यायविद्यामृत[1] बतलाया है।

उपर्युक्त दो मौलिक ग्रन्थोंके अतिरिक्त अन्य प्रमुख न्यग्रन्थोंका परिचय देना भी यहाँ अप्रासंगिक न होगा। अनेकान्तवादको व्यवस्थित करनेका सर्वप्रथम श्रेय स्वामी समन्तभद्र, (द्वि० या तृ० शदी ई०) और सिद्धसेन दिवाकर (छठी शती ई०) को प्राप्त है स्वामी समन्तभद्रकी आप्तमीमांसा और युक्त्यनुशासन महत्व पूर्ण कृतियां हैं। आप्त मीमांसामें एकान्तवादियोंके मन्तव्योंकी गम्भीर आलोचना करते हुए आप्तकी मीमांसा की गई है और युक्तियोंके साथ स्याद्वाद सिद्धान्तकी व्याख्या की गई है। इसके ऊपर भट्टाकलंक (६२०-६८० ई०) का अष्ट शती विवरण उपलब्ध है तथा आचार्य विद्यानंदि (९वीं श. ई०) का 'अष्टसहस्री' नामक विस्तृत भाष्य और वसुनन्दिकी (देवागम वृत्ति) नामक टीका प्राप्य है। युक्त्यनुशासनमें जैन शासनकी निर्दोषता सयुक्तिक सिद्ध की गई है। इसी प्रकार सिद्धसेनदिवाकर द्वारा अपनी स्तुति प्रधान बत्तीसियोंमें और महत्वपूर्ण सम्मतितर्कभाष्यमें बहुतही स्पष्ट रीतिसे तत्कालीन प्रचलित एकान्तवादोंका स्याद्वाद सिद्धान्तके साथ किया गया समन्वय दिखलाई देता है।

भट्टाकलङ्कदेव जैन न्यायके प्रस्थापक माने जाते हैं और इनके पश्चाद्भावी समस्त जैनतार्किक इनके द्वारा व्यवस्थित न्याय मार्गका अनुसरण करते हुए ही दृष्टिगोचर होते हैं। इनकी अष्टशती, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय लघीयस्त्रय और प्रमाणसंग्रह बहुत ही महत्वपूर्ण दार्शनिक रचनाएँ हैं। इनकी समस्तरचनाएँ जटिल और दुर्बोध

१. 'अकलङ्कवचोऽम्भोधेरुद्ध्रे येन धीमता।
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने॥'
'प्रमेयरत्नमाला' पृ० २

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। परन्तु वे इतनी गम्भीर हैं कि उनमें 'गागरमें सागर' की तरह पदे-पदे जैन दार्शनिक तत्त्वज्ञान भरा पड़ा है।

आठवीं शतीके विद्वान आचार्य हरिभद्रकी 'अनेकांत जयपताका' तथा षट्दर्शन समुच्चय मूल्यवान और सारपूर्ण कृतियाँ हैं। ईसाकी नवीं शतीके प्रकाण्ड आचार्य विद्यानन्दके अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, आदि रचनाओंमें भी एक विशाल किन्तु आलोचना पूर्ण विचारराशि बिखरी हुई दिखलाई देती है। इनकी प्रमाणपरीक्षा नामक रचनामें विभिन्न प्रामाणिक मान्यताओंकी आलोचना की गई है और अकलङ्क सम्मत प्रमाणोंका सयुक्तिक समर्थन किया गया है। सुप्रसिद्ध तार्किक प्रभाचन्द्र आचार्यने अपने दीर्घकाय प्रमेयकमल मार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रमें जैन प्रमाण शास्त्रसे सम्बन्धित समस्त विषयोंकी विस्तृत और व्यवस्थित विवेचना की है। तथा ग्यारवीं शतीके विद्वान अभय देवने सिद्धसेन दिवाकर कृत सन्मतितर्ककी टीकाके व्याजसे समस्त दार्शनिक वादोंका संग्रह किया है। बारवीं शतीके विद्वान् वादी देवराज सूरिका स्याद्वादरत्नाकर भी एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। तथा कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रकी प्रमाणमीमांसा भी जैन न्यायकी एक अनूठी रचना है।

उक्त रचनाएँ नव्य न्यायकी शैलीसे एक दम अस्पृष्ट है। हाँ, विमलदासकी सप्तभंगतरंगिणी और वाचक यशोविजयजी द्वारा लिखित अनेकान्तव्यवस्था शास्त्रवार्तासमुच्चय तथा अष्टसहस्रीकी टीका अवश्य ही नव्य न्यायकी शैली से लिखित प्रतीत होती हैं।

व्याकरण—आचार्य पूज्यपाद (वि छटीं श०) का 'जैनेन्द्रव्याकरण' सर्वप्रथम जैनव्याकरण माना जाता है। महाकवि धनञ्जय (८ वीं शती) ने इसे अपश्चिमरत्न[1] बतलाया है? इस ग्रन्थ पर निम्नलिखित टीकाएँ उपलब्ध हैं:—

(१) अभयनन्दिकृत महावृत्ति (२) प्रभाचन्द्रकृत शब्दाम्भोजभास्कर (३ आचार्य श्रुतकीर्तिकृत पंचवस्तुप्रक्रिया, (४) पं० महाचन्द्रकृत लघुजैनेन्द्र।

प्रस्तुत जैन व्याकरणके दो प्रकारके सूत्र पाठ पाये जाते हैं। प्रथम सूत्रपाठके दर्शन ऊपरि लिखित चार टीकाग्रंथोंमें होते हैं और दूसरे सूत्रपाठके शब्दार्णवचन्द्रिका तथा शब्दार्णवप्रक्रियामें। पहले पाठमें ३००० सूत्र हैं। यह सूत्रपाठ पाणिनीयकी सूत्र पद्धतिके समान है। इसे सर्वाङ्ग सम्पन्न बनानेकी दृष्टिसे महावृत्तिमें अनेक वार्तिक और उपसंख्याओंका निवेश किया गया है। दूसरे सूत्रपाठमें ३७०० सूत्र हैं। पहले सूत्रपाठकी अपेक्षा इसमें ७०० सूत्र अधिक हैं और इसी कारण इसमें एक भी वार्तिक आदिका उपयोग नहीं हुआ है। इस संशोधित और परिवर्द्धित संस्करणका नाम शब्दार्णव है। इसके कर्ता गुणनन्दि (वि० १० श०) आचार्य है। शब्दार्णव पर भी दो टीकाएँ उपलब्ध हैं:—(१) शब्दार्णवचन्द्रिका और (२) शब्दार्णव प्रक्रिया। शब्दार्णवचन्द्रिका सोमदेव मुनिने वि० सं० १२६२ में लिख कर समाप्त की है और शब्दार्णवप्रक्रियाकार भी बारवीं[2] शती चारुकीर्ति पण्डिताचार्य अनुमानित किये गये हैं।

महाराज अमोघवर्ष प्रथम) के समकालीन शाकटायन या पाल्यकीर्तिका शाकटायन (शब्दानुशासन) व्याकरण भी महत्वपूर्ण रचना है। प्रस्तुत व्याकरण पर निम्नाङ्कित सात टीकाएँ उपलब्ध हैं—

(१) अमोघवृत्ति—शाकटायनके शब्दानुशासन पर स्वयं सूत्रकार द्वारा लिखी गयी यह सर्वाधिक विस्तृत और महत्वपूर्ण टीका है। राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्षको लक्ष्यमें रखते हुए ही इसका उक्त नामकरण किया गया प्रतीत होता है (२) शाकटायनन्यास अमोघवृत्ति पर प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा विरचित यह न्यास है। इसके केवल दो अध्याय ही उपलब्ध हैं। (३) चिंतामणि टीका (लघीयसीवृत्ति) इसके रचयिता यक्षवर्मा हैं और अमोघवृत्तिको संक्षिप्त करके ही इसकी रचना की गयी है। (४) मणिप्रकाशिका—इसके कर्ता अजितसेनाचार्य हैं। (५) प्रक्रियासंग्रह—भट्टोजीदीक्षितकी सिद्धांतकौमुदीकी पद्धति पर लिखी गया यह एक प्रक्रिया टीका है, इसके कर्ता अभयचन्द्र आचार्य हैं। (६) शाकटायन टीका—

१ प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणं।
धनञ्जयकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम्॥
—धनंजयनाममाला

२ जैन साहित्य और इतिहास (पं० नाथूराम प्रेमी) का 'देवनन्दि और उनका जैनेन्द्रव्याकरण' शीर्षक निबन्ध।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावसेन[1] त्रैविद्यदेवने इसकी रचना की है यह कातन्त्र रूपमाला टीकाके भी रचयिता हैं। (७) रूपसिद्धि—लघु-कौमुदीके समान यह एक अल्पकाय टीका है। इसके कर्ता दयापाल वि० ११ वीं श०) मुनि हैं।

आचार्य हेमचन्द्रका सिद्धहेम शब्दानुशासन भी महत्व पूर्ण रचना है। यह इतनी आकर्षक रचना रही है कि इस-के आधार पर तैयार किये गये अनेक व्याकरण ग्रन्थ उप-लब्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक जैन व्याकरण ग्रंथ जैनाचार्योंने लिखे हैं और अनेक जैनेतर व्याकरण ग्रन्थों पर महत्वपूर्ण टीकाएँ भी लिखी हैं। पूज्यपादने पा-णिनीय व्याकरण पर 'शब्दावतार' नामक एक न्यास लिखा था जो सम्प्रति अप्राप्य है। और जैनाचार्यों द्वारा सारस्वत व्याकरण पर लिखित विभिन्न बीस टीकाएँ आज भी उप-लब्ध हैं*।

शर्ववर्माका कातंत्रव्याकरण भी एक सुबोध और संक्षिप्त व्याकरण है तथा इस पर भी विभिन्न चौदह टीकाएँ प्राप्य हैं।

अलङ्कार

अलङ्कार विषयमें भी जैनाचार्योंकी महत्वतूर्ण रचनाएँ उपलब्ध हैं। हेमचन्द्र और वाग्भटके काव्यानुशासन तथा वाग्भटका वाग्भटालंकार महत्वकी रचनाएँ हैं अजितसेन आचार्यकी अलंकार चिन्तामणि और अमरचन्द्रकी काव्य-कल्पलता बहुत ही सफल रचनाय हैं।

जैनेतर अलंकार शास्त्रों पर भी जैनाचार्योंकी कतिपय टीकाएँ पायी जाती हैं। काव्यप्रकाशके ऊपर भानुचन्द्रगणि जयनन्दिसूरि और यशोविजयगणि (तपागच्छ की टीकाएं उपलब्ध हैं। इसके सिवा दण्डीके काव्यादर्श पर त्रिभुवन-चंद्रकृत टीका पायी जाती है और रुद्रटके काव्यालंकार पर नमिसाधु (११२५ वि०सं०) के टिप्पण भी सारपूर्ण है।

नाटक—

नाटकीय साहित्यसृजनमें भी जैन साहित्यकारोंने अपनी प्रतिभाका उपयोग किया है। उभय-भाषा-कवि-चक्रवर्ति हस्तिमल्ल (१३ वीं श०) के विक्रांतकौरव, जयकुमार सुलोचना) सुभद्राहरण और अंजनापवनंजय उल्लेखनीय नाटक हैं। आदिके दो नाटक महाभारतीय कथाके आधारपर रचे गये हैं और उत्तरके दो रामकथाके आधारपर। हेमचन्द्र आचार्यके शिष्य रामचन्द्रसूरिके अनेक नाटक उपलब्ध हैं जिसमें नलविवाह, सत्यहरिश्चंद्र, कौमुदी मित्रानंद, राघवाभ्युदय, निर्भयभीमव्यायोग आदि नाटक बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

श्रीकृष्णमिश्रके 'प्रबोध चंद्रोदय' की पद्धतिपर रुपका-त्मक (Allegorical) शैलीमें लिखा गया यशपाल (१३ वीं शती०) का 'मोहराज पराजय' एक सुप्रसिद्ध नाटक है। इसी शैलीमें लिखे गये वादिचन्द्रसूरिकृत ज्ञानसूर्योदय तथा यशश्चंद्रकृत मुदितकुमुदचंद्र असाम्प्र-दायिक नाटक हैं। इनके अतिरिक्त जयसिंहका हम्मीरमद-मर्दन नामक एक ऐतिहासिक नाटक भी उपलब्ध है।

काव्य—

जैन काव्य-साहित्य भी अपने ढंगका निराला है। काव्य साहित्यसे हमारा आशय गद्य काव्य, महा काव्य, चरित्रकाव्य, चम्पूकाव्य, चित्रकाव्य और दूतकाव्योंसे है। गद्यकाव्यमें तिलकमंजरी (९७० ई०) और ओडयदेव (वादीभसिंह ११ वीं सदी) की गद्यचिन्तामणि महाकवि बाणकृत कादम्बरीके जोड़की रचनाएँ हैं।

महाकाव्यमें हरिचंद्रका धर्मशर्माभ्युदय, वीरनन्दिका चन्द्रप्रभचरित अभयदेवका जयन्तविजय, अर्हद्दासका मुनिसुव्रत काव्य, वादिराजका पार्श्वनाथचरित्र, वाग्भटका नेमिनिर्वाणकाव्य मुनिचन्दका शान्तिनाथचरित और महासनका प्रद्युम्नचरित्र, आदि उत्कृष्ट कोटिके महाकाव्य तथा काव्य हैं। चरित्र काव्यमें जटासिंहनन्दिका वरांग-चरित, रायमल्लका जम्बूस्वामीचरित्र, असग कविका महावीर चरित, आदि उत्तम चरित काव्य माने जाते हैं।

चम्पू काव्यमें आचार्य सोमदेवका यशस्तिलकचम्पू (वि० १०१६) बहुत ही ख्याति प्राप्त रचना है। अनेक विद्वानोंके विचारमें उपलब्ध संस्कृत साहित्यमें इसके जोड़ का एकभी चम्पू काव्य नहीं है। हरिश्चन्द्र महाकविका जीवन्धरचम्पू तथा अर्हद्दासका पुरुदेवचम्पू (१३वीं शती) भी उच्च कोटिकी रचनाएँ हैं। चित्रकाव्यमें महाकवि धनंजय (८ वीं श०) का द्विसन्धान शान्तिराजका पञ्च-संधान, हेमचन्द्र तथा मेघविजयगणीके सप्तसन्धान, जगन्नाथ (१६६६ वि० सं०) का चतुर्विंशति सन्धान तथा

---

१ जिनरत्नकोश (भ० ओ० रि० इ० पूना)

* जिनरत्नकोश (भ० ओ० रि० इ०, पूना)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिनसेनाचार्यका पार्श्वभ्युदय उत्तम कोटिके चित्र काव्य हैं।

दूत काव्यमें मेघदूतकी पद्धति पर लिखे गये वादिचन्द्रका पवनदूत, चारित्र सुन्दरका शीलदूत, विनयप्रभका चन्द्रदूत, विक्रमका नेमिदूत और जयतिलकसूरिका धर्मदूत उल्लेखनीय दूत-काव्य हैं।

इनके अतिरिक्त चन्द्रप्रभसूरिका प्रभावक चरित, मेरुतुङ्गकृत प्रबन्ध चिन्तामणि (१३०६ ई०) राजशेखर का प्रबन्ध कोष (१३४२ ई०) आदि प्रबन्ध काव्य ऐतिहासिक दृष्टिसे बड़ेही महत्व पूर्ण हैं।

छन्द शास्त्र—

छन्द शास्त्र पर भी जैन विद्वानोंकी मूल्यवान रचनाएँ उपलब्ध हैं। जयकीर्ति (११६२) का स्वोपज्ञ छन्दोऽनुशासन तथा आचार्य हेमचन्द्रका स्वोपज्ञ छन्दोऽनुशासन महत्वकी रचनाएँ हैं। जयकीर्तिने अपने छन्दोऽनुशासनके अन्तमें लिखा है कि उन्होंने माण्डव्य, पिङ्गल, जनाश्रय, शैतव, श्रीपूज्यपाद और जयदेव आदिके छन्दशास्त्रोंके आधारपर अपने छन्दोऽनुशासनकी रचना की है१। वाग्भट्टका छन्दोऽनुशासन भी इसी कोटिकी रचना है और इस पर इनकी स्वोपज्ञ टीका भी है। राजशेखरसूरि (११४६ वि०) का छन्दःशेखर और रत्नमंजूषा भी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

इसके अतिरिक्त जैनेतर छन्दः शास्त्र पर भी जैनाचार्योंकी टीकाएँ पायी जाती हैं। केदारभट्टके वृत्तरत्नाकर पर सोमचन्द्रगणी, क्षेमहंसगणी, समयसुन्दरउपाध्याय, आसड और मेरुसुन्दर आदिकी टीकायें उपलब्ध हैं। इसी प्रकार कालिदासके श्रुतबोध पर भी हर्षकीर्ति, और कांतिविजयगणीकी टीकाएँ प्राप्य हैं। संस्कृत भाषाके छन्द-शास्त्रोंके सिवा प्राकृत और अपभ्रंश भाषाके छंदशास्त्रों पर भी जैनाचार्योंकी महत्वपूर्ण टीकाएँ उपलब्ध हैं।

कोश—

कोशके क्षेत्रमें भी जैन साहित्यकारोंने अपनी लेखनीका यथेष्ट कौशल प्रदर्शित किया है। अमरसिंहगणीकृत अमरकोष संस्कृतज्ञ समाजमें सर्वोपयोगी और सर्वोत्तम कोष माना जाता है। उसका पठन-पाठनभी अन्य कोषोंकी अपेक्षा सर्वाधिक रूपमें प्रचलित है। धनञ्जयकृत धनञ्जयनाममाला दो सौ श्लोकोंकी अल्पकाय रचना होने परभी बहुत ही उपयोगी है। प्राथमिक कक्षाके विद्यार्थियोंके लिये जैन समाजमें इसका खूब प्रचलन है।

अमरकोषकी टीका (व्याख्यासुधाख्या) की तरह इस पर भी अमरकीर्तिका एक भाष्य उपलब्ध है। इस प्रसगमें आचार्य हेमचन्द्रविरचित अभिधानचिन्तामणि नाममाला एक उल्लेखनीय कोशकृति है। श्रीधरसेनका विश्वलोचनकोष, जिसका अपर नाम मुक्तावली है एक विशिष्ट और अपने ढंगकी अनूठी रचना है। इसमें ककारांतादि व्यंजनोंके क्रमसे शब्दोंकी संकलना की गयी है, जो एकदम नवीन है।

मन्त्रशास्त्र—

मन्त्रशास्त्र पर भी जैन रचनाएँ उपलब्ध हैं। विक्रमकी ११ वीं शतीके अन्त और बारवींके आदिके विद्वान मल्लिषेणका 'भैरवपद्मावतिकल्प, सरस्वतीमन्त्रकल्प और ज्वालामालिनीकल्प महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। भैरव पद्मावतिकल्पमें१ मन्त्रीलक्षण, सकलीकरण, देव्यर्चन, द्वादशरंजिकामन्त्रोद्धार, क्रोधादिस्तम्भन, अङ्गनाकर्षण, वशीकरणयन्त्र, निमित्तवशीकरणतन्त्र और गारुडमन्त्र नामक दस अधिकार हैं तथा इस पर बन्धुषेणका एक संस्कृत विवरण भी उपलब्ध है। ज्वालामालिनी कल्प नामक एक अन्य रचना इन्द्रनन्दिकी भी उपलब्ध है जो शक सं० ८६१ में मान्यखेटमें रची गयी थी। विद्यानुवाद या विद्यानुशासन नामक एक और भी महत्वपूर्ण रचना है जो २४ अध्यायोंमें विभक्त है। वह मल्लिषेणाचार्यकी कृति बतलायी जाती है परन्तु अन्तः परीक्षणसे प्रतीत होता है कि इसे मल्लिषेणके किसी उत्तरवर्ति विद्वानने ग्रथित किया है२। इनके अतिरिक्त हस्तिमल्लका विद्यानुवादाङ्ग तथा भक्तामरस्तोत्र मन्त्र भी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

---

(१) मांडव्य-पिंगल-जनाश्रय-सैतवाख्य,
श्रीपूज्यपाद-जयदेवबुधादिकानां।
छन्दांसि वीक्ष्य विविधानपि, सत्प्रयोगान्,
छन्दोनुशासनमिदं जयकीर्तिनोक्तम् ॥

१ इस ग्रन्थको श्री साराभाई मणिलाल नवाब अहमदाबादने सरस्वतीकल्प तथा अनेक परिशिष्टोंमें गुजराती अनुवाद सहित प्रकाशित किया है।

२ जैन साहित्य और इतिहास (श्री पं० नाथूरामजी प्रेमी) पृ० ४१५।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुभाषित और राजनीति—

सुभाषित और राजनीतिसे सम्बंधित साहित्यके सृजनमें जैन लेखकोंने पर्याप्त योगदान किया है। इस प्रसंगमें आचार्य अमितगतिका सुभाषित रत्नसन्दोह (१०५० वि०) एक सुन्दर रचना है इसमें सांसारिकविषयनिराकरण, मायाहंकारनिराकरण इन्द्रियनिग्रहोपदेश, स्त्रीगुणदोषविचार, देवनिरूपण आदि बत्तीस प्रकरण हैं। प्रत्येक प्रकरण बीस बीस, पच्चीस पच्चीस पद्योंमें समाप्त हुआ है। सोमप्रभकी सूक्तिमुक्तावली. सकलकीर्तिकी सुभाषितावली आचार्य शुभचन्द्रका ज्ञानार्णव, हेमचन्द्राचार्यका योग शास्त्र आदि उच्च कोटिके सुभाषित ग्रन्थ हैं। इनमेंसे अन्तिम दोनों ग्रन्थोंमें योगशास्त्रका महत्वपूर्ण निरूपण है।

राजनीतिमें सोमदेवसूरिका नीतिवाक्यामृत बहुत ही महत्वपूर्ण रचना है। सोमदेवसूरिने अपने समयमें उपलब्ध होने वाले समस्त राजनैतिक और अर्थशास्त्रीय साहित्यका मन्थन करके इस सारवत् नीतिवाक्यामृतका सृजन किया है। अतः यह रचना अपने ढंगकी मौलिक और मूल्यवान है।

आयुर्वेद

आयुर्वेदके सम्बन्धमें भी कुछ जैन रचानाएं उपलब्ध हैं। उग्रादित्यका कल्याणकारक, पूज्यपादवैद्यसार अच्छी रचनाएँ हैं। पण्डितप्रवर आशाधर (१३ वीं सदी) ने वाग्भट्ट या चरक सहितापर एक अष्टाङ्ग हृदयोद्योतिनी नामक टीका लिखी थी. परन्तु सम्प्रति वह अप्राप्य है। चामुण्डरायकृत नरचिकित्सा, मल्लिषेणकृत बालग्रह चिकित्सा, तथा सोमप्रभाचार्यका रसप्रयोग भी उपयोगी रचनाएं हैं।

कला और विज्ञान

जैनाचार्योंने वैज्ञानिक साहित्यके ऊपर भी अपनी लेखनी चलायी। हंसदेव (१३ वीं सदी) का मृगपक्षीशास्त्र एक उत्कृष्टकोटिकी रचना मालूम होती है। इसमें १७१२ पद्य हैं और इसकी एक पाण्डुलिपि त्रिवेन्द्रमके राजकीय पुस्तकागारमें सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त चामुण्डरायकृत कूपजलज्ञान, वनस्पतिस्वरूप, विधानादि परीक्षाशास्त्र, धातुसार, धनुर्वेद रत्नपरीक्षा, विज्ञानार्णव आदि ग्रन्थ भी उल्लेखनीय वैज्ञानिक रचनाएँ हैं।

ज्योतिष, सामुद्रिक तथा स्वप्नशास्त्र

ज्योतिष शास्त्रके सम्बन्धमें जैनाचार्योंकी महत्वपूर्ण रचनाएँ उपलब्ध हैं। गणित और फलित दोनों भागोंके ऊपर ज्योतिर्ग्रन्थ पाये जाते हैं। जैनाचार्योंने गणित ज्योतिष सम्बन्धि विषयका प्रतिपादन करनेके लिये पाटीगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति, गोलीयरेखागणित, चापीय एवं वक्रीयत्रिकोणमिति, प्रतिभागणित, शृंगोन्नतिगणित, पंचांगनिर्माण गणित, जन्मपत्रनिर्माणगणित ग्रहयुति उदयास्तसम्बन्धी गणित एवं यन्त्रादिसाधनसम्बन्धितगणितका प्रतिपादन किया है।

जैन गणितके विकासका स्वर्णयुग छठवींसे बारवीं तक है। इस बीच अनेक महत्वपूर्ण गणित ग्रंथोंका प्रथन हुआ हैं। इसके पहलेकी कोई स्वतन्त्र रचना उपलब्ध नहीं है। कतिपय आगमिक ग्रन्थोंमें अवश्य गणितसम्बन्धि कुछ बीजसूत्र जाते हैं।

सूर्यप्रज्ञप्ति तथा चन्द्रप्रज्ञप्ति प्राकृतकी रचनायें होने पर भी जैन गणितकी अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा प्राचीन रचनाएँ हैं। इनमें सूर्य और चन्द्रसे तथा इनके ग्रह, तारा मण्डल आदिसे सम्बन्धित गणित तथा विद्वानोंका उल्लेख दृष्टिगोचर होता है। इनके अतिरिक्त महावीराचार्य (९वीं सदी) का गणितसारसंग्रह श्रीधरदेवका गणिततशास्त्र, हेमप्रभसूरिका त्रैलोक्यप्रकाश और सिंहतिलकसूरिका गणिततिलक आदि ग्रन्थ सारगर्भित और उपयोगी हैं।

फलित ज्योतिषसे सम्बन्धित होराशास्त्र, संहिताशास्त्र, मुहूर्तशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र. प्रश्नशास्त्र और स्वप्नशास्त्र आदि पर भी जैनचार्योंने अपनी रचनाओंमें पर्याप्त प्रकाश डाला है और मौलिक ग्रथ भी दिये हैं। इस प्रसंगमें चन्द्रसेन मुनिका केवलज्ञान होरा दामनंदिके शिष्य भट्टवासरिका आयज्ञानतिलक. चंद्रोन्मीलनप्रश्न, भद्रबाहुनिमित्तशास्त्र, अर्घकाण्ड, मुहूर्तदर्पण. जिनपालगणीका स्वप्नचिंतामणि आदि उपयोगी ग्रन्थ हैं।

जैसा ऊपर कहा गया है, इस लेखमें संस्कृत साहित्यके विषयमें जैनविद्वानोंके मूल्यवान सहयोगका केवल दिग्दर्शन ही कराया गया है। संस्कृत साहित्यके प्रेमियोंको उन आदरणीय जैन विद्वानोंका कृतज्ञ ही होना चाहिए। हमारा यह कर्तव्य है कि हम हृदयसे इस महान् साहित्यसे परिचय प्राप्त करें और यथा सम्भव उसका संस्कृत समाजमें प्रचार करें। (वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थसे)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दोहाणुपेहा

(कवि लक्ष्मीचंद)

पणविवि सिद्ध महारिसिहिं, जो परभावहं मुक्कु ।
परमाणंद परिठियउ, चउ-गइ-गमणहं चुक्कु ॥ १ ॥
जइ बीहउ चउ-गइ-गमण, तो जिणउत्तु करेहि ।
दो दह अणुवेहा मुणहि, लहु सिव-सुक्खु लहेहि ॥२॥
अद्धुय असरणु जिणु भणइं, संसारु वि दुह-खाणि ।
एकत्तुवि अण्णत्तु मुणि, असुइ सरीरु वियाणि ॥३
आसव संवर णिज्जर वि, लोया भावविसेसु ।
धम्मुवि दुल्लह बोहिजिय,, भावें गलइ किलेसु ॥४॥
जलबुब्बउ जोविउ चवलु, धणु जोव्वण तडि-तुल्लु ।
इसउ वियाणि वि मा गर्महिं माणुस-जम्मु अमुल्लु ॥५॥
जइ णिच्चु वि जाणियइ, तो परिहरहिं अणिच्चु ।
तं काइं णिच्चुवि मुणहिं, इम सुय केवलि वुत्तु ॥६
असरणु जाणहिं सयलु जिय, जीवहं सरणु ण कोइ ।
दंसण-णाण-चरित्तमउ, अप्पा अप्पउ जोइ ॥७
दसण-णाण-चरित्तमउ. अप्पा सरणु मुणेइ ।
अण्णु ण सरणु वियाणि तुहुँ जिणवरु एम भणेइ ॥८॥
तइ लो उ वि महु मरणु बुहु, हउं कहु सरण हु जाम ।
इम जाणे विणु थिरु रहइ, जो तइ लोयकु साम ॥९॥
पंच पयारह परिभमइ पंचह बंधिउ सोइ ।
जाम ण अप्पु मुणेहि फुडु, एम भणंति हु जोइ ॥१०॥
इक्किल्लउ गुणगणनिलउ, बीयउ अत्थि ण कोइ ।
मिच्छादंसणु मोहियउ, चउगइ हिंडइं सोइ ॥११
जइ सहंसणु सो लहइ, तो परभाव चएइ ।
इक्किल्लउ सिव-सुहु लहइ, जिणवरु एम भणेइ ॥१२॥
अण्णु सरीरु मुणेहिं जिय, अप्पउ केवलि अण्णु ।
तो अणु विसयलु वि चयहि, अप्पा अप्पउ मण्णु ॥ ३॥
जिम कट्ठह डहणहं मुणहिं वइसानरु फुडु होइ ।
तिम कम्महं डहणहं भविय, अप्पा अण्णु क होइ ॥१४
सत्त धाउमउ पुग्गालु वि, किमि-कुलु-असुइ निवासु ।
तहिं णाणिउं किमइं करइ, जो छंडइ तव पासु ॥१५॥
असुइ सरीरु मुणेहिं जइ, अप्पा णिम्मलु जाणि ।
तो असुइ वि पुग्गलु चयहिं,एम भणंति हु णाणि ॥१६॥
जो सु-सहाव चए वि मुणि, परभावहिं परणेइ ।
सो आसउ जाणे हि तुहुं, जिणवर एम भणेइ ॥१७॥
आसउ संसारह मुणहिं, कारणु अण्णु ण कोइ ।
इम जाणे विणु जी तुहुँ, अप्पा अप्पउ जोइ ॥१८
जो परियाणंइ अप्प-परु, जो परभाव चएइ ।
सो संवर जाणे वि तुहुँ, जिणवर एम भणेइ ॥१९॥
जइ जिय संवरु तुहुं करहि, भो ! सिव सुक्खु लहेहिं ।
अण्णु वि सयलु परिचयहिं, जिणवर एम भणेहिं ॥२०॥
सहजाणंद परिट्ठियउं, जे परभाव ण लिंति ।
ते सुहु असुहु वि णिज्जरहिं, जिणवरु एम भणंति ॥२१॥
स-सरीरु वि तइलोउ मुणि, अण्णु ण बीयउ कोइ ।
जहिं आधार परिट्ठियउ, सो तुहुं अप्पा जोइ ॥२२॥
सो दुल्लह लाहु वि मुणहिं, जो परमप्पय लाहु ।
अण्णु ण दुल्लह किंपि तुहुँ, णाणी बोलहिं साहु ॥२३
पुणु पुणु अप्पा झाइयइ, मण-वय-काय-ति-सुद्धि ।
राय रोस-वे परिहरि वि, जइ चाहहि सिव-सिद्धि ॥२४॥
राय-रोस-जो परिहरि वि, अप्पा अप्पहिं जोइ ।
जिणसामिउ एमइ भणइं, सहजि उपज्जइ सोइ ॥२५॥
जो जोवइसो जोइयइ, अण्णु ण जोयहिं कोइ ।
इम जाणेविणु सम-रहं, सइं पहुँ पइयउ होइ ॥ ६॥
को जोवइ को जोइयइ, अण्णु ण दीसइ कोइ ।
सो अखंडु जिण उत्तियउ, एम भणंतिहु जोइ ॥२७
जो सुण्णु वि सो सुण्णु मुणि, अप्पा सुण्णु ण होइ ।
सल्लु सहावें परिहवइं, एम भणंति हु जोइ ॥२८
परमाणंद परिट्ठियहिं, जो उपज्जइ कोइ ।
सो अप्पा जोणेवि तुहुं, एम भणंति हु जोइ ॥२९॥
सुधु सहावें परिणवइ, परभावहं जिण उत्तु ।
अप्प सहावें सु ण्णु णवि, इम सुइ केवलि उत्तु ॥३०॥
अप्प सरूवहं लइ रहहि, छंडइ सयल-उपाधि
भणइं जोइ जोइहिं भणउ, जीवह एह समाधि ॥३१॥
सो अप्पा मुणि जीव तुहुं, केवलणाण सहावु ।
भणइ जोई जोईहि जिउ, जइ चाहहि सिवलाहु ॥३२
जोइय जोउ निवारि, समरसताइ परिट्ठियउ ।
अप्पा अण्णु विचारि, भणइं जोइहि भणिउ ॥३३
जोइ य जोयइ जीओ, जो जोइज्जइ सो जि तुहुं ।
अण्णु ण बीयउ कोइ, भणइं जोइ जोइहिं भणिउ ।३४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोहं सोहं जि हउं, पुणु पुणु अप्पु मुणेइ ।
मोक्खहं कारणि जोइया, अण्णु म सो चिंतेइ ॥३५
धम्मु मुणिज्जहि इक्कु पर, जइ चेयण परिणामु ।
अप्पा अप्पउ झाइयइ, सो सासय-सुहु-धामु ॥३६
ताई भूप विडंबियओ, णो इत्थहि (णिव्वाणु ।
तो न समीहहि तत्तु तुहुं, जो तइलोय-पहाणु ॥३७
हत्थ अ दुट्ठ जु देवलि, तहि सिव संतु मुणेइ ।
मूढा देवलि देउ णवि, भुल्लउ काइं भमेइ ॥३८
जो जाणइ ति जाणियउ, अण्णु ण म जाणइ कोइ ।
धंधइ पडियउ सयल्लु जगु एम भणंति हु जोइ ॥३९॥
जो जाणइ सो जाणियइं यहु सिद्धंतहं सारु ।
सो झाइज्जइ इक्कु पर, जो तइलोयह सारु ॥४०॥
अज्झवसाण णिमित्ताइण, जो बंधिज्जइ कम्मु ।
सो मुच्चिज्जइ तो जि परु, जइ लब्भइ जिण धम्मु ॥४१
जो सुह-असुहु विवज्जयउ, सुद्ध सचेयण भाउ ।
सो धम्मु वि जाणेहिं जिय, णाणी बोल्लहि साहु ॥४२॥
घेयहं धारणु परिहरिउ, जासु पइट्ठइ भाउ ।
सो कम्मेण हि बंधयइं, जहिं भावइ तहिं जाउ ॥४३
सो दोहउ अप्पाण हो, अप्पा जो ण मुणेइ ।
सो झायंत हं परम पउ, जिणवरु एम भणेइ ॥४४
वउ-तउ-णियमु करंत यहं जो ण मुणइ अप्पाणु ।
सो मिच्छादिट्ठि हवइ णहु पावहि णिव्वाणु ॥४५
जो अप्पा णिम्मलु मुणइ, वय-तव-सील समाणु ।
सो कम्मक्खउ फुडु करइ, पावइ लहु णिव्वाणु ॥४६
ए अणुवेहा जिण भणय, णाणी बोलहिं साहु ।
ते ताविज्जहिं जीव तुहुँ, जइ चाहहि सिव-लाहु ॥४७॥

इति अणुवेहा

वीरसेवामन्दिरका नया प्रकाशन

पाठकोंको यह जानकर अत्यन्त हर्ष होगा कि आचार्य पूज्यपादका 'समाधितन्त्र और इष्टोपदेश' नामकी दोनों आध्यात्मिक कृतियाँ संस्कृतटीकाके साथ बहुत दिनोंसे अप्राप्य थीं, तथा मुमुक्षु आध्यात्म प्रेमी महानुभावोंकी इन ग्रन्थोंकी मांग होनेके फलस्वरूप वीरसेवामन्दिरने 'समाधितन्त्र और इष्टोपदेश' नामक ग्रन्थ पं० परमानन्द शास्त्री कृत हिन्दी टीका और प्रभाचन्द्राचार्यकृत समाधितन्त्र टीका और आचार्य कल्प पं० आशाधरजी कृत इष्टोपदेशकी संस्कृतटीका भी साथमें लगा दी है । स्वाध्याय प्रेमियोंके लिये यह ग्रन्थ खास तौरसे उपयोगी है । पृष्ठ संख्या सब तीनसौ से ऊपर है । सजिल्द प्रतिका मूल्य ३) रुपया और बिना जिल्दका २॥) रुपया है । बाइंडिंग होकर ग्रन्थ एक महीनेमें प्रकाशित हो जायगा । ग्राहकों और पाठकोंको अभीसे अपना आर्डर भेज देना चाहिये ।

मैनेजर—वीरसेवा मन्दिर,
१ दरियागंज, देहली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Regd. No. D. 211

अनेकान्तके संरक्षक और सहायक

संरक्षक

१५००) बा० नन्दलालजी सरावगी, कलकत्ता
२५१) बा० छोटेलालजी जैन सरावगी ,,
२५१) बा० सोहनलालजी जैन लमेचू ,,
२५१) ला० गुलजारीमल ऋषभदासजी ,,
२५१) बा० ऋषभचन्द (B.R.C. जैन ,,
२५१) बा० दीनानाथजी सरावगी ,,
२५१) बा० रतनलालजी झांझरी ,,
२५१) बा० बल्देवदासजी जैन सरावगी ,,
२५१) सेठ गजराजजी गंगवाल ,,
२५१) सेठ सुआलालजी जैन ,,
२५१) बा० मिश्रीलाल धर्मचन्दजी ,,
२५१) सेठ मांगीलालजी ,,
२५१) सेठ शान्तिप्रसादजी जैन ,,
२५१) बा० विशनदयाल रामजीवनजी, पुरनिया
२५१) ला० कपूरचन्द धूपचन्दजी जैन, कानपुर
२५१) बा० जिनेन्द्रकिशोरजी जैन जौहरी, देहली
२५१) ला० राजकृष्ण प्रेमचन्दजी जैन, देहली
२५१) बा० मनोहरलाल नन्हेंमलजी, देहली
२५१) ला० त्रिलोकचन्दजी, सहारनपुर
२५१) सेठ छदामीलालजी जैन, फीरोजाबाद
२५१) ला० रघुवीरसिंहजी, जैनावाच कम्पनी, देहली
२५१) रायबहादुर सेठ हरखचन्दजी जैन, रांची
२५१) सेठ बधीचन्दजी गंगवाल, जयपुर

सहायक

१०१) बा० राजेन्द्रकुमारजी जैन, न्यू देहली
१०१) ला० परसादीलाल भगवानदासजी पाटनी, देहली
१०१) बा० लालचन्दजी बी० सेठी, उज्जैन
१०१) बा० घनश्यामदास बनारसीदासजी, कलकत्ता
१०१) बा० लालचन्दजी जैन सरावगी ,,
१०१) बा० मोतीलाल मक्खनलालजी, कलकत्ता
१०१) बा० बद्रीप्रसादजी सरावगी, ,,
१०१) बा० काशीनाथजी, ... ,,
१०१) बा० गोपीचन्द रूपचन्दजी ,,
१०१) बा० धनंजयकुमारजी ,,
१०१) बा० जीतमलजी जैन ,,
१०१) बा० चिरंजीलालजी सरावगी ,,
१०१) बा० रतनलाल चांदमलजी जैन, राँची
१०१) ला० महावीरप्रसादजी ठेकेदार, देहली
१०१) ला० रतनलालजी मादीपुरिया, देहली
१०१) श्री फतेहपुर जैन समाज, कलकत्ता
१०१) गुप्तसहायक, सदर बाजार, मेरठ
१०१) श्री शीलमालादेवी धर्मपत्नी डा०श्रीचन्द्रजी, एटा
१०१) ला० मक्खनलाल मोतीलालजी ठेकेदार, देहली
१०१) बा० फूलचन्द रतनलालजी जैन, कलकत्ता
१०१) बा० सुरेन्द्रनाथ नरेन्द्रनाथजी जैन, कलकत्ता
१०१) बा० वंशीधर जुगलकिशोरजी जैन, कलकत्ता
१०१) बा० बद्रीदास आत्मारामजी सरावगी, पटना
१०१) ला० उदयराम जिनेश्वरदासजी सहारनपुर
१०१) बा० महावीरप्रसादजी एडवोकेट, हिसार
१०१) ला० बलवन्तसिंहजी, हांसी जि० हिसार
१०१) कुँवर यशवन्तसिंहजी, हांसी जि० हिसार
१०१) सेठ जोखारामं बैजनाथ सरावगी, कलकत्ता
१०१) श्रीमती ज्ञानवतीदेवी जैन, धर्मपत्नी 'वैद्यरत्न' आनन्ददास जैन, धर्मपुरा, देहली
१०१) बाबू जिनेन्द्रकुमार जैन, सहारनपुर
१०१) वैद्यराज कन्हैयालालजी चाँद औषधालय, कानपुर
१०१) रतनलालजी जैन कालका वाले देहली

अधिष्ठाता 'वीर-सेवामन्दिर'
सरसावा, जि० सहारनपुर

प्रकाशक— परमानन्दजी जैन शास्त्री १, दरियागंज देहली। मुद्रक—रूप-वाणी प्रिंटिंग हाउस २३, दरियागंज, देहली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org